'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'

महादेव की महिमा

संकलन : श्री श्री नारायण प्रेम साईं

अकस्मात् से रक्षा, संकट निवृति, महामारी, अकालमृत्यु,

दु:साध्य रोग के लिए प्रभावशाली, चमत्कारी

महामृत्युंजय मंत्र

'ॐ हौं जूँ सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्व्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः ॐ। सः जूँ हौं ॐ'

महादेव की महिमा

भगवान् सदाशिवका भक्त भगवान्को एक ही बार प्रणाम करने से अपने को मुक्त मानता है । भगवान् भी 'महादेव' ऐसे नाम उच्चारण करने वाले के प्रति ऐसे दौड़ते हैं, जैसे वत्सला गौ बछड़े के प्रति—

महादेव महादेव महादेवति वादिनम् ।
वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनुधावति ॥

जो पुरुष तीन बार 'महादेव, महादेव, महादेव' इस तरह भगवान् का नाम उच्चारण करता है, भगवान् एक नामसे मुक्ति देकर शेष दो नामसे सदाके लिए उसके ऋणी हो जाते हैं—

महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत् ।
एकेन मुक्तिमाप्नोति द्वाभ्यां शम्भु ऋणी भवेत् ॥

कैसे हैं ये महादेव ! कितने दयालु ! कितने सरल ! कितने भोले ! कितने विचित्र !

जिनका मन महादेव में रम गया, वह सचमुच धन्य है !

महादेव की महिमा
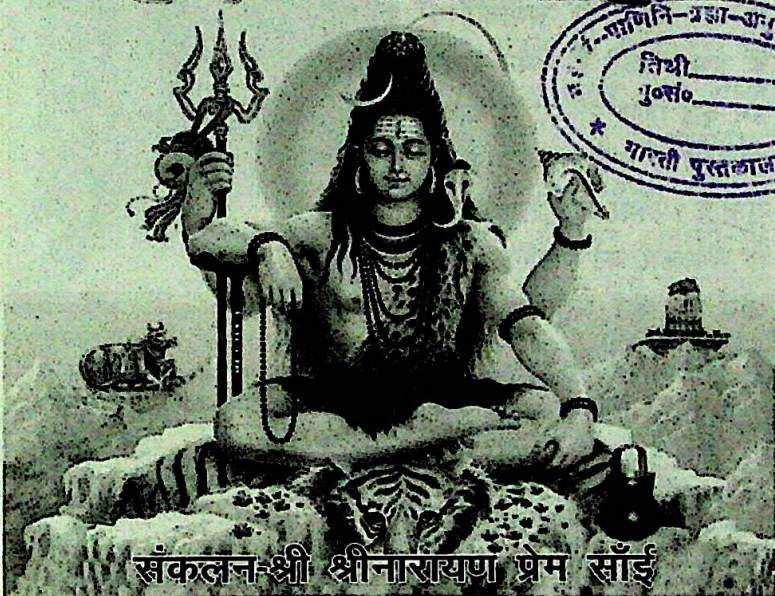
संकलन-श्री श्रीनारायण प्रेम साँई

प्रकाशक

आनन्द निकेतन साँई सेवा समिति

पो. पेढमाला पर्वत, रुपाल रोड़, गांभोई-रायगढ़ के पास,
हिम्मत नगर-मोड़ासा के बीच, जि. साबरकाँठा, गुजरात-383 030
फोन : 09353-29933, 094267-50159, 9377924111
साँई सेवा आश्रम-02772-250111/777
वेबसाइट - www.narayansai.org
प्रथम संस्करण : (6-3-2008 महाशिवरात्रि) द्वितीय संस्करण : (23-2-2009 महाशिवरात्रि), 6000 प्रतियाँ

मुद्रक : श्री कृष्णा आर्ट प्रेस
1/429/5, फ्रेण्ड्स कालोनी, इण्डस्ट्रीयल एरिया, जी०टी० रोड़, शाहदरा, दिल्ली-110095
पवन सक्सेना : 9311139000, 9711179000

मूल्य रू० : 25/- (प्रत्येक प्रति/डाकखर्च अतिरिक्त)

निवेदन

भारत में ऐसे कई शिव मन्दिर हैं–जो बहुत ही चमत्कारिक हैं, प्रभावशाली हैं। मैंने प्रत्यक्ष उन कई शिव मन्दिरों में जाकर देखा है। कईयों के मुख से सुना है। अगर उन शिव मन्दिरों के चमत्कारों को संकलित किया जाये तो कई बहुत बड़े-बड़े ग्रन्थ तैयार हो जायें।

सचमुच! भगवान आशुतोष की उपासना करनेवाले मनुष्य भाग्यशाली हैं, उनमें श्रद्धा रखनेवालों की संभाल वे करते हैं। अडिग आस्था और अटूट विश्वास से स्तुति, जप, प्रार्थना, पूजा अभिषेक करने से मनुष्य सांसारिक मोहमाया आदि दोषों व शारीरिक मानसिक रोगों से मुक्त हो सकता है, यह एकदम सत्य है।

शास्त्रों से मुझे जो भी सारगर्भित, हृदयस्पर्शी लगा, मैंने जो भी महादेव शंकर के विषय में पढ़ा, सुना–वह संकलित करके यह लघु ग्रंथ आपके हाथों में सौंपा है। श्रद्धा भक्ति के साथ महादेव की उपासना करनेवाले, शिव नाम का जप करने वाले तथा उनकी स्तुति करने वालों को स्वर्गभोग व मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं। वे मृत्यु का अतिक्रमण, संकटों से त्राण पा सकते हैं एवं आधि-व्याधि, अकस्मात् (दुर्घटना) आदि से बच सकते हैं।

शिवेति द्व्यक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः ।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यति न चान्यथा ।।

जो लोग 'शिव' इस दो अक्षर के नामका उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे– इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

इसमें गंधर्वराज पुष्पदंन की कथा है व उनके द्वारा रचित शिवमहिम्नस्तोत्र भी दिया है । गोस्वामी तुलसीदास कृत **'रूद्राष्ट्रकम्'** भी शामिल है । मेरे पूज्य पितास्वरूप गुरुदेव–पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापूजी द्वारा महाशिवारात्रि के विभिन्न अवसरों पर दिये हुए सारगर्भित सत्संग प्रवचन को भी संक्षिप्त रूप में शामिल किया गया है ।

भगवान राम के गुरुदेव वशिष्ठ जी ने भी शिव उपासना की थी। उनके द्वारा रचित **'दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम्'** भी इसमें शामिल किया है–इसका पाठ करने से दरिद्रता का नाश हो सकता हैं ।

आशा है, आपको यह शिव उपासना संबंधी संक्षिप्त पुस्तिका (लघु ग्रंथ) बहुत–बहुत उपयोगी होगी । शिवरात्रि पर अपने स्नेही मित्रों परिजनों को उपहार स्वरूप भी इसे दे सकते हैं । देश–विदेश के समस्त शिव मंदिरों में इसे रखना चाहिये, ऐसा मेरा विचार है । आपका अपना सर्वसुहृद्–

नारायण प्रेम सांई
(पेठमाला आश्रम)

विमोचन : 6/3/2008
महाशिवरात्रि महोत्सव
(6 से 9 मार्च 2008)
लखनऊ (उत्तरप्रदेश)

✥✦✦✥

अनुक्रमाणिका

श्रीशिवप्रात:स्मरणस्तोत्रम्

प्रात: स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं
गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं
संसाररोगहरमौषधमाद्वितीयम् ॥१॥
प्रातर्नमामि गिरिशं गिरिजार्द्धदेहं
सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोऽभिरामं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥२॥

जो सांसारिक भयको हरनेवाले और देवताओंके स्वामी हैं, जो गंगाजीको धारण करते हैं, जिनका वृषभ वाहन है, जो अम्बिकाके ईश हैं तथा जिनके हाथ में खट्वाङ्ग, त्रिशूल और वरद तथा अभयमुद्रा है, उन संसार-रोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषधरूप 'ईश' (महादेवजी)-का मैं प्रात:समयमें स्मरण करता हूँ ॥१॥

भगवती पार्वती जिनका आधा अङ्ग हैं, जो संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, आदिदेव हैं, विश्वनाथ हैं, विश्व-विजयी और

मनोहर हैं, सांसारिक रोग को नष्ट करनेके लिये अद्वितीय औषधरूप उन 'गिरीश' (शिव)-को मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ ॥२॥

प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं
वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
नामादिभेदरहितं च विकारशून्यं
संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥३॥

प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य
श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःखजातं बहुजन्मसञ्चितं
हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥४॥

॥ इति श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

जो अन्तसे रहित आदिदेव हैं, वेदान्तसे जानने योग्य, पापरहित एवं महान् पुरुष हैं तथा जो नाम आदि भेदोंसे रहित, छः विकारों, (जन्म, वृद्धि, स्थिरता, परिणमन, अपक्षय और विनाश)-से शून्य, संसार-रोगको हरनेके निमित्त अद्वितीय औषध हैं, उन एक शिवजीको मैं प्रातःकाल भजता हूँ ॥३॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर शिवका ध्यान कर प्रतिदिन इन तीनों श्लोकोंका पाठ करते हैं, वे लोग अनेक जन्मोंके संचित दुःखसमूहसे मुक्त होकर शिवजीके उसी कल्याणमय पदको पाते हैं ॥४॥

॥इस प्रकार श्रीशिवप्रातःस्मरणस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

ॐ

॥ नमः शिवय ॥

भगवान् शिवको नमस्कार

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च
मस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधि-
पतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥

कल्याण एवं सुखके मूल स्रोत भगवान् शिवको नमस्कार है। कल्याणके विस्तार करनेवाले तथा सुखके विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मङ्गलस्वरूप और मङ्गलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है।

जो सम्पूर्ण विद्याओंके ईश्वर, समस्त भूतोंके अधीश्वर, ब्रह्म-वेदके अधिपति, ब्रह्म-बल-वीर्यके प्रतिपालक तथा साक्षात् ब्रह्मा एवं परमात्मा हैं, वे सच्चिदानन्दमय शिव मेरे लिये नित्य कल्याणस्वरूप बने रहें।

तत्पदार्थ-परमेश्वररूप अन्तर्यामी पुरुषको हम जानें, उन महादेवका चिन्तन करें, वे भगवान् रुद्र हमें सद्धर्मके लिये प्रेरित करते रहें।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः
सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय
नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय
नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय
नमो मनोन्मनाय नमः ॥

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय यो चोभाभ्यामकरं नमः ॥

यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

जो अघोर हैं, घोर हैं, घोर से भी घोरतर हैं और जो सर्वसंहारी रुद्ररूप हैं, आपके उन सभी स्वरूपोंको मेरा नमस्कार हो।

प्रभो! आप ही वामदेव, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, रुद्र, काल, कलविकरण, बलविकरण, बल, बलप्रमर्थन, सर्वभूतदमन तथा मनोन्मन आदि नामों से प्रतिपादित होते हैं, इन सभी नाम-रूपोंमें आपके लिये मेरा बारम्बार नमस्कार है।

मैं सद्योजात [शिव]-की शरण लेता हूँ। सद्योजातको मेरा नमस्कार है। किसी जन्म या जगत्में मेरा अतिभव–पराभव न करें। आप भवोद्भवको नमस्कार है।

हे रुद्र! आपको सायंकाल, प्रातःकाल, रात्रि और दिनमें भी नमस्कार है। मैं भवदेव तथा रुद्रदेव दोनों को नमस्कार करता हूँ।

वेद जिनके निःश्वास हैं, जिन्होंने वेदों से सारी सृष्टिकी रचना की और जो विद्याओंके तीर्थ हैं, ऐसे शिवकी मैं वन्दना करता हूँ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृतयोर्मुक्षीय मामृतात् ॥

सर्वो वै रुद्रस्तस्मै रुद्राय नामो अस्तु। पुरुषो वै रुद्रः सन्महो नमो नमः । विश्वं भूतं भुवनं चित्रं बहुधा जातं जायमानं च यत् । सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ।

तीन नेत्रोंवाले, सुगन्धयुक्त एवं पुष्टिके वर्धक शंकरका हम पूजन करते हैं, वे शंकर हमको दुःखोंसे ऐसे छुड़ायें जैसे खरबूजा पककर बन्धनसे अपने-आप छूट जाता है, किंतु वे शंकर हमें मोक्षसे न छुड़ायें।

जो रुद्र उमापति हैं वही सब शरीरोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हैं, उनके निमित्त हमारा प्रणाम हो। प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र ही पुरुष है, वह ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा-रूपसे, प्रजापतिलोकमें प्रजापतिरूपसे, सूर्यमण्डलमें वैराटरूपसे तथा देहमें जीवरूपसे स्थित हुआ है; उस महान् सच्चिदानन्दस्वरूप रुद्रको बारम्बार प्रणाम हो। समस्त चराचरात्मक जगत् जो विद्यमान है, हो गया है तथा होगा, वह सब प्रपञ्च रुद्रकी सत्तासे भिन्न नहीं हो सकता, यह सब कुछ रुद्र ही है, इस रुद्रके प्रति प्रणाम हो।

महादेवजी की विलक्षण रहनीकरनी एवं अद्भुत वेशभूषा

शिवजीका अनोखा वेश : देता है दिव्य संदेश

❖ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❖

यास्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके ।
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट् ।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा ।
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम् ॥

'जिनकी गोद में हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तक पर गंगाजी, ललाट पर द्वितीया का चंद्रमा, कंठ में हलाहल विष और वक्षःस्थल पर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ सर्वेश्वर, संहारकर्त्ता (या भक्तों के पापनाशक), सर्वव्यापक, कल्याणस्वरूप, चंद्रमा के समान शुभ्रवर्ण श्रीशंकरजी सदा मेरी रक्षा करें!'

'शिव' अर्थात् कल्याणस्वरूप। भगवान् शिव तो हैं ही प्राणिमात्र के परम हितैषी, परम कल्याणकारक लेकिन उनका बाह्य रूप भी मानवमात्र को एक मार्गदर्शन प्रदान करनेवाला है।

शिवजी का निवास-स्थान है कैलाश शिखर। ज्ञान हमेशा धावल शिखर पर रहता है अर्थात् ऊँचे केन्द्रों में रहता है जबकि अज्ञान नीचे के केन्द्रों में रहता है। काम, क्रोध, भय आदि के समय मनप्राण नीचे के केन्द्र में, मूलाधार केन्द्र में रहते हैं। मन और प्राण अगर ऊपर के केन्द्रों में हों तो वहाँ काम टिक नहीं सकता।

ब्रह्मचिंतन करने से, शिवतत्त्व का चिंतन करने से बुद्धि का प्रकाश बढ़ने लगता है, पितरों का उद्धार होने लगता है, चित्त की चंचलता मिटने लगती है, दिल की दरिद्रता दूर होने लगती है एवं मन में शांति आने लगती है। शिवपूजन का महान फल यही है कि मनुष्य शिवत्त्व को प्राप्त हो जाये।

शिवजी को काम ने बाण मारा लेकिन शिवजी की निगाहमात्र से ही काम जलकर भस्म हो गया। आपके चित्त में भी यदि कभी काम आ जाये तो आप भी ऊँचे केन्द्रों में आ जाओ ताकि वहाँ काम की दाल न गल सके।

कैलास शिखर धवल है, हिमशिखर धवल है और वहाँ शिवजी निवास करते हैं। ऐसे ही जहाँ सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, वहीं आत्मशिव रहता है।

शिवजी की जटाओं से गंगाजी निकलती है अर्थात् ज्ञानी के मस्तिष्क में से ज्ञानगंगा बहती है। उनमें तमाम प्रकार की ऐसी योग्यताएँ होती हैं कि जिनसे जटिल-से-जटिल समस्याओं का समाधान भी अत्यंत सरलता से हँसते-हँसते हो जाता है।

शिवजी के मस्तक पर द्वितीया का चाँद सुशोभित होता है अर्थात् जो ज्ञानी हैं वे दूसरों का नन्हा-सा प्रकाश, छोटा-सा गुण भी शिरोधार्य करते हैं। शिवजी ज्ञान के निधि हैं, भण्डार हैं, इसीलिये तो किसीके भी ज्ञान का अनादर नहीं करते हैं वरन् आदर ही करते हैं।

शिवजी ने गले में मुण्डों की माला धारण की है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये मुण्ड किसी साधारण व्यक्ति के मुण्ड नहीं, वरन् ज्ञानवानों के मुण्ड हैं। जिनके मस्तिष्क में जीवनभर ज्ञान के विचार ही रहे हैं, ऐसे ज्ञानवानों की स्मृति ताजी करने के लिये उन्होंने मुण्डमाला धारण की है। कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार शिवजी ने गले में मुण्डों की माला धारण करके हमें बताया है कि गरीब हो चाहे धनवान्, पठित हो चाहे अपठित, माई हो चाहे भाई लेकिन अंत समय में सब खोपड़ी छोड़कर जाते हैं। आप अपनी खोपड़ी में चाहे कुछ भी भरो, आखिर वह यहीं रह जाती है।

भगवान शंकर देह पर भभूत रमाये हुए हैं क्योंकि वे शिव हैं, कल्याणस्वरूप हैं। लोगों को याद दिलाते हैं कि चाहे तुमने कितना ही पद-प्रतिष्ठावाला, गर्व भरा जीवन बिताया हो, अंत में तुम्हारी देह का क्या होनेवाला है, वह मेरी देह पर लगायी हुई भभूत बताती है। अतः इस चिताभस्म को याद करके आप भी मोह-ममता और गर्व को छोड़कर अंतर्मुख हो जाया करो।

शिवजी के अन्य आभूषण हैं बड़े विकराल सर्प। अकेला होता है तो मारा जाता है लेकिन यदि वही सर्प शिवजी के गले में, उनके हाथ पर होता है तो पूजा जाता है। ऐसे ही आप संसार का व्यवहार केवल अकेले करोगे तो मारे जाओगे लेकिन शिवतत्त्व में डुबकी मारकर संसार का व्यवहार करोगे तो आपका व्यवहार भी आदर्श व्यवहार बन जायेगा।

शिवजी के हाथों में त्रिशूल एवं डमरू सुशोभित हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे सत्त्व, रज एवं तम–इन तीन गुणों के आधीन नहीं होते, वरन् उन्हें अपने आधीन रखते हैं और जब प्रसन्न होते हैं तब डमरू लेकर नाचते हैं।

कई लोग कहते हैं कि शिवजी को भाँग का व्यसन है। वास्तव में तो उन्हें भुवन भंग करने का यानी सृष्टि का संहार करने का व्यसन है, भाँग पीने का नहीं। किन्तु भंगेड़ियों ने 'भुवन भंग' में से अकेले 'भंग' शब्द का अर्थ 'भाँग' लगा लिया और भाँग पीने की छूट ले ली।

उत्तम माली वही है जो आवश्यकता के अनुसार बगीचे में काट-छाँट करता रहता है, तभी बगीचा सजा-धजा रहता है। अगर वह बगीचे में काट-छाँट न करे तो बगीचा जंगल में बदल जाये। ऐसे ही भगवान् शिव इस संसार के उत्तम माली हैं, जिन्हें भुवनों को भंग करने का व्यसन है।

शिवजी के यहाँ बैल-सिंह, मोर-साँप-चूहा आदि परस्पर विपरीत स्वभाव के प्राणी भी मजे से एक साथ निर्विघ्न रह लेते हैं। क्यों? शिवजी की समता के प्रभाव से। ऐसे ही जिसके जीवन में समता है वह विरोधी वातावरण में, विरोधी विचारों में भी बड़े मजे से जी लेता है।

जैसे, आपने देखा होगा कि गुलाब के फूल को देखकर बुद्धिमान् व्यक्ति प्रसन्न होता है कि : 'काँटों के बीच भी वह कैसे महक रहा है! जबकि फरियादी व्यक्ति बोलता है कि : 'एक फूल और इतने सारे काँटे! क्या यही है संसार, कि जिसमें जरा-सा सुख और कितने सारे दुःख!'

जो बुद्धिमान् है, शिवतत्त्व का जानकार है, जिसके जीवन में समता है, वह सोचता है कि जिस सत्ता से फूल खिला है, उसी सत्ता ने काँटों को भी जन्म दिया है। जिस सत्ता ने सुख दिया है, उसी सत्ता ने दुःख को भी जन्म दिया है। सुख-दुःख को देखकर जो उसके मूल में पहुँचता है, वह मूलों के मूल महादेव को भी पा लेता है।

इस प्रकार शिवतत्त्व में जो जागे हुए हैं उन महापुरुषों की तो बात ही निराली है लेकिन जो शिवजी के बाह्य रूप को ही निहारते हैं वे भी अपने जीवन में उपरोक्त दृष्टि ले आयें तो उनकी भी असली शिवरात्रि, कल्याणमयी रात्रि हो जाये...

कल्याणमय शिव के पूजन की रात्रि:महाशिवरात्रि

'स्कंदपुराण' के ब्रह्मोत्तर खंड में शिवरात्रि के उपावास तथा जागरण की महिमा का वर्णन करते हुए सूतजी ऋषियों से कहते हैं–

"माघ मास (हिन्दी फाल्गुन मास) में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का उपवास अत्यंत दुर्लभ है। उसमें भी शिवरात्रि जागरण करना तो मैं मनुष्यों के लिए और दुर्लभ मानता हूँ। उससे भी अत्यंत दुर्लभ है शिवलिंग का दर्शन तथा परमेश्वर शिव के पूजन को तो मैं और भी दुर्लभतर मानता हूँ।"

'ईशान संहिता' के अनुसार पृथ्वी से शिवजी की प्रथम लिंगमूर्ति का आविर्भाव उक्त तिथि की महानिशा में ही हुआ था इसी के उपलक्ष्य में इस व्रत की उत्पत्ति बतायी जाती है।

'शिवपुराण' में लिखा है कि एकमात्र शिवही निर्गुण–निराकार होने से 'निष्कल' हैं, शेष सभी सगुण विग्रहयुक्त होने से 'सकल' कहे जाते हैं। निष्कल होने से ही शिव का निराकार (आकार–विशेष शून्य) लिंग पूज्य होता है एवं सकल होने से ही अन्य देवताओं का साकार विग्रह पूज्य होता है।

'शिवपुराण'में ब्रह्मा-विष्णुका विवाद मिटाने के लिए निष्कल स्तंभरूप में शिव का प्रादुर्भाव इस प्रकार वर्णित है-

सृष्टि के आदि में दो महाशक्तियों ब्रह्मा एवं विष्णु के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी ने कहा कि सृष्टिकर्त्ता की विशेषता ज्यादा है एवं विष्णुजी ने कहा कि पालनकर्त्ता की विशेषता ज्यादा है दोनों में कौन महान है? इस विषय पर उनका विवाद मिटाने के लिए एक परम ज्योतिर्मय लिंग का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका एक छोर आकाश की ओर जा रहा था एवं दूसरा छोर पाताल की ओर जा रहा था। दोनों छोरों का कोई अंत नजर नहीं आ रहा था।

ब्रह्माजी उस लिंग के छोर का पता लगाने के लिए हंस पर आरूढ़ होकर ऊपर की ओर गये एवं विष्णुजी वराह रूप धारणकर नीचे की ओर गये। हजारों वर्षों तक घोर परिश्रम करने पर भी दोनों को उस परम ज्योतिर्मय लिंग का आदि-अंत न मिल पाया। आखिर दिव्यवाणी से भगवान् शिव ने ब्रह्मा-विष्णु के विवाद को मिटाया। जिस रात्रिको वह लिंग प्रकट हुआ, वही रात्रि शिवरात्रि कहलायी। लिंग को देखकर दोनों को आश्चर्य हुआ था कि अहो! इसका कोई ओर-छोर ही नहीं है। अतः यह रात्रि 'अहोरात्रि' भी कहलाती है।

वर्ष में चार महारात्रियाँ होती हैं-

(1) मोहरात्रि अर्थात् जन्माष्टमी

(2) कालरात्रि- नरक चतुर्दशी

(3) दारुणरात्रि- होली एवं

(4) अहोरात्रि- शिवरात्रि

अन्य उत्सवों जैसे दीपावली, होली, मकर संक्रांति आदि में खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, मिलने-जुलने आदि का महत्त्व होता है,

लेकिन यह शिवरात्रि महोत्सव ऐसा नहीं है। यह व्रत, उपवास एवं तपस्या का दिन है। दूसरे महोत्सव तो लोगों से मिलने के लिए होते हैं लेकिन यह शिवरात्रि का पर्व अपने अहं को मिटाकर लोकेश्वर से मिलने के लिए है।

भगवान् श्रीराम ने भी जब लंका की ओर प्रयाण करने का विचार किया; तब पहले सेतुबंध रामेश्वर की स्थापना की एवं आराधना-उपासना करके शिवजी को प्रसन्न किया। बाद में उन्होंने लंका की ओर कूच की।

इन पौराणिक कथाओं से ज्ञात होता है कि कोई भी भगीरथ कार्य करना हो तो उसके लिए अपने जीवन में थोड़ी एकाग्रता लानी चाहिए, थोड़ी आराधना-उपासना करनी चाहिए। मन में अनंत शक्ति है। यदि मन इन्द्रियों के पक्ष में होकर बहिर्मुख हो जाता है तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। लेकिन वही मन यदि अंतर्मुख होकर शिवतत्त्व के, आत्मतत्त्व के पक्ष में हो जाता है तो उसमें अद्‌भुत शक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगता है। इस प्रकार यह केवल लौकिक ही नहीं, वरन् आध्यात्मिक जगत में भी सफलता के शिखरों को सर करने में सहयोगी हो जाता है।

प्राकृतिक नियम के अनुसार महाशिवरात्रि जीव-शिव के एकत्व में मदद करने वाले ग्रह-नक्षत्रों के योग का दिवस है। इस दिन रात्रि-जागरण कर ईश्वर की आराधना-उपासना की जाती है।

'शिव' से तात्पर्य है 'कल्याण' अर्थात् यह रात्रि बड़ी कल्याणकारी रात्रि है। इस रात्रि में जागरण करते हुए ॐ... नमः... शिवाय... इस प्रकार प्लुत जप करें, मशीन की नाईं जप, पूजा न करें, जप में जल्दबाजी न हो। बीच-बीच में आत्मविश्रांति मिलती जाय। इसका बड़ा हितकारी प्रभाव, अद्‌भुत लाभ होता है। यह परम पद में प्रतिष्ठित होने का सुंदर तरीका है। महाशिवरात्रि को भक्तिभावपूर्वक रात्रि-जागरण करना चाहिए। 'जागरण' का मतलब है जागना। जागना अर्थात्

अनुकूलता-प्रतिकूलता में न बहना, बदलने वाले शरीर-संसार में रहते हुए अबदल आत्मशिव में जागना। मनुष्य-जन्म कहीं विषय-विकारों में बर्बाद न हो जाय बल्कि अपने लक्ष्य परमात्मा-तत्त्व को पाने में ही लगे-इस प्रकार के विवेक-बुद्धि से अगर आप जागते हो तो वह शिवरात्रि का 'जागरण' हो जाता है। इस जागरण से आपके कई जन्मों के पाप-ताप, वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं तथा बुद्धि शुद्ध होने लगती है एवं जीव शिवत्व में जागने के पथ पर अग्रसर होने लगता है। महाशिरात्रि का पर्व अपने अहं को मिटाकर लोकेश्वर से मिलने के लिए है। जिन्हें संसार से सुख-वैभव लेने की इच्छा होती है वे भी शिवजी की अराधना करते हैं।

जल, पंचामृत, फल-फूल एवं बिल्वपत्र से शिवजी का पूजन करते हैं। बिल्वपत्र में तीन पत्ते होते हैं जो सत्व, रज एवं तमोगुण के प्रतीक हैं। हम अपने ये तीनों गुण शिवार्पण करके गुणों से पार हो जायें, यही इसका हेतु है। पंचामृत-पूजा क्या है? पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-इन पंचमहाभूतों का ही सारा भौतिक विलास है इन पंचमहाभूतों का भौतिक विलास जिस चैतन्य की सत्ता से हो रहा है उस चैतन्य स्वरूप शिव में अपने अहं को अर्पित कर देना, यही पंचामृत-पूजा है। धूप और दीप द्वारा पूजासे क्या तात्पर्य है? 'शिवोऽहम्, आनन्दोऽहम्' (मैं शिवस्वरूप हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ) इस भावमें तल्लीन होकर अपने शिवस्वरूप, आनन्दस्वरूप की सुवास से वातावरण को महकाना ही धूप करना है और आत्मज्ञान के प्रकाश में जीने का संकल्प करना दीप प्रकटाना है।

चाहे जंगल या मरूभूमि में क्यों न हो, रेती या मिट्टी के शिवजी बना लिये, उस पर पानी के छींटे मार दिये, जंगली फूल तोड़कर धर

दिये और मुँह से ही नाद बजा दिया तो शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं एवं भावना शुद्ध होने लगती है, आशुतोष जो ठहरे! जंगली फूल भी शुद्ध भाव से तोड़कर शिवलिंग पर चढ़ाओगे तो शिवजी प्रसन्न हो जाते हैं और यही फूल कामदेव ने शिवजी को मारे तो शिवजी नाराज हो गये। क्यों? क्योंकि फूल मारने के पीछे कामदेव का भाव शुद्ध नहीं था, इसीलिए शिवजी ने तीसरा नेत्र खोलकर उसे भस्म कर दिया। शिवपूजा में वस्तु का मूल्य नहीं, भाव का मूल्य है। **भावो हि विद्यते देवो।**

आराधना का एक तरीका यह है कि उपवास रखकर पुष्प, पंचामृत, बिल्वपत्रादि से चार प्रहर पूजाकी जाय। दूसरा तरीका यह है कि मानसिक पूजा की जाय। हम मन-ही-मन भावना करें–

ज्योतिर्मात्रिस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये॥

'ज्योतिमात्र (ज्ञानज्योति अर्थात् सच्चिदानन्द साक्षी) जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, जो लिंगस्वरूप ब्रह्म हैं, उन परम शांत कल्याणमय भगवान् शिव को नमस्कार है।'

तीसरा तरीका यह भी है कि चित्त का एक संकल्प उठा और दूसरा उठने को है, उस शिवस्वरूप व आत्मस्वरूप मध्यावस्था को तुम मैं रूप में स्वीकार कर लो, उसमें टिक जाओ।

चौथा तरीका यह भी है कि किसी नदी या जलाशय के किनारे बैठकर जल की लहरों को एकटक देखते जाओ अथवा तारों को निहारते-निहारते अपनी दृष्टि को उन पर केन्द्रित कर दो। दृष्टि बाहर की लहरों पर केन्द्रित है और वह दृष्टि केन्द्रित है कि नहीं, उसकी

निगरानी मन करता है, उसको निहारने वाला मैं कौन हूँ? गहराई से इसका चिंतन करते-करते आप परम शांति में भी विश्रांति कर सकते हो।

पाँचवा तरीका यह है कि जीभ न ऊपर हो न नीचे हो बल्कि तालू के मध्य में हो और जिह्वा पर ही आपकी चित्तवृत्ति स्थिर हो। इससे भी मन शांत हो जाएगा और शांत मन में शांत शिवतत्त्व का साक्षात्कार करने की क्षमता प्रगट होने लगेगी।

साधक चाहे तो कोई भी एक तरीका अपनाकर शिवतत्त्व में जगने का यत्न कर सकता है। महाशिवरात्रि का यही उत्तम पूजन है।

दरिद्रता दूर करने वाला प्रयोग

महादेवकी उपासना करनेवाले महर्षि वशिष्ठ ने 'दारिद्रियदहनशिवस्तोत्रम्' की रचनाकी है। शंकर की आराधनासे ही उनको ब्रह्मवर्चस्‌की प्राप्ति हुई थी। उन्होंने भगवान् श्री रामको ब्रह्मज्ञान दिया। महामुनिं ब्रह्मर्षि वशिष्ठ द्वारा रचित इस दारिद्रियदहनशिवस्तोत्रका पाठ करनेवालेके पास दरिद्रता नहीं आती ऐसी इस स्तोत्रकी महिमा है।

शास्त्रोंमें वर्णन आता है कि ब्रह्मर्षि वशिष्ठने महादेवकी आराधनामें बड़ा दुष्कर तप किया। सौ वर्षों तक उन्होंने केवल फलोंका आहार किया। दो सौ वर्षतक केवल सूखे पत्ते खाकर रहे। पाँच सौ वर्षतक केवल जल पीकर बिताये और एक हजार वर्षतक केवल हवा पीकर भगवान्‌की आराधना करते रहे। तब भगवान् शंकर उनके ऊपर प्रसन्न हुए। उस समय पर्वतको भेदकर उनके सामने एक सुन्दर परम सुन्दर शिवलिङ्ग प्रकट हुआ। उसे देखकर वशिष्ठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अनेक प्रकार से उनकी स्तुति करने लगे। अनन्तर उसी लिङ्गमेंसे यह वाणी निकली कि 'हे मुने! तुम्हारे मनकी सब बातें मुझे ज्ञात हैं। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये आजसे मैं सदा इस लिङ्गमें निवास करूँगा। इसके पूजनसे मनुष्यों को सब प्रकारके सुख प्राप्त होंगे। मेरी प्रसन्नताके लिए इन्द्रके द्वारा भेजी गयी इन त्रैलोक्य-पावनी मन्दाकिनीमें स्नान कर जो अचलेश्वर नामक लिङ्गका दर्शन करेगा, वह जरा और मरणसे रहित परमपदको प्राप्त होगा।'

यह अचलेश्वर महादेव आज भी अर्बुदाचाल, जिसे माउण्ट आबू कहते हैं, वहाँ स्थित है।

विशेष बात–जिन लोगोंको घरमें बरकत न होती हो या दरिद्रता हो उन लोगोंको खास यहाँ दिये जा रहे ब्रह्मर्षि वशिष्ठ द्वारा रचित दारिद्रियदहन शिवस्तोत्रका पाठ नित्य अथवा हर सोमवारको करना चाहिए व भगवान् शंकर को बिल्वपत्र, जल आदि चढ़ाना चाहिए।

दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम्

विश्वेश्वराय नरकार्णवतारणाय
कर्णामृताय शशिशेखरधारणाय।
कर्पूरकान्तिधवलाय जटाधराय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥१॥
गोरीप्रियाय रजनीशकलाधराय
कालान्तकाय भुजगाधिपकङ्कणाय ।
गङ्गाधराय गजराजविमर्दनाय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ॥२॥
भक्तिप्रियाय भवरोगभयापहाय
उग्राय दुर्गभवसागरतारणाय ।

समस्त चराचर विश्वके स्वामिरूप विश्वेश्वर, नरकरूपी संसारसागरसे उद्धार करनेवाले, कर्णसे श्रवण करनेमें अमृतके समान नामवाले, अपने भालपर चन्द्रमाको आभूषणरूपमें धारण करनेवाले, कर्पूरकी कान्तिके समान धवल वर्णवाले, जटाधारी और दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ॥१॥

गौरीके अत्यन्त प्रिय, रजनीश्वर (चन्द्र)-की कलाको धारण करनेवाले, कालके भी अन्तक (यम)-रूप, नागराजको कङ्कणरूपमें धारण करनेवाले, अपने मस्तकपर गङ्गाको धारण करनेवाले, गजराजका विमर्दन करनेवाले और दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ।।२।।

ज्योतिर्मयाय गुणनामसुनृत्यकाय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।३।।
चर्माम्बराय शवभस्मविलेपनाय
भालेक्षणाय मणिकुण्डलमण्डिताय ।
मञ्जीरपदयुगलाय जटाधराय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।४।।
पञ्चाननाय फणिराजविभूषणाय
हेमांशुकाय भुवनत्रयमण्डिताय ।
आनन्दभूमिवरदाय तमोमयाय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।५।।

भक्तिके प्रिय, संसाररूपी रोग एवं भयके विनाशक, संहारके समय उग्ररूपधारी, दुर्गम भवसागरसे पार करानेवाले, ज्योतिःस्वरूप, अपने गुण और नामके अनुसार सुन्दर नृत्य करनेवाले तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ।।३।।

व्याघ्रचर्मधारी, चिताभस्मको लगानेवाले, भालमें तृतीय नेत्रधारी, मणियोंके कुण्डलसे सुशोभित, अपने चरणोंमें नूपुर धारण करनेवाले जटाधारी और दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ।।४।।

पाँच मुखवाले, नागराजरूपी आभूषणोंसे सुसज्जित, सुवर्णके समान वस्त्रवाले अथवा सुवर्णके समान किरणवाले, तीनों लोकोंमें पूजित, आनन्दभूमि (काशी)-को वर प्रदान करनेवाले, सृष्टि संहारके लिये

तमोगुणाविष्ट होनेवाले तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ।।५।।

भानुप्रियाय भवसागरतारणाय
कालान्तकाय कमलासनपूजिताय ।
नेत्रत्रयाय शुभलक्षणलक्षिताय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।६।।

रामप्रियाय रघुनाथवरप्रदाय
नागप्रियाय नरकार्णवतारणाय ।
पुण्येषु पुण्यभरिताय सुरार्चिताय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।७।।

मुक्तेश्वराय फलदाय गणेश्वराय
गीतप्रियाय वृषभेश्वरवाहनाय ।
मातङ्गचर्मवसनाय महेश्वराय
दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।८।।

सूर्यको अत्यन्त प्रिय अथवा सूर्यके प्रेमी, भवसागरसे उद्धार करनेवाले, कालके लिये भी महाकालस्वरूप, कमलासन (ब्रह्मा)-से सुपूजित, तीन नेत्रोंको धारण करनेवाले, शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ।।६।।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामको अत्यन्त प्रिय अथवा रामसे प्रेम करनेवाले, रघुनाथको वर देनेवाले, सर्पोंके अतिप्रिय, भवसागररूपी नरकसे तारनेवाले, पुण्यवानोंमें पूरिपूर्ण पुण्यवाले, समस्त देवताओंसे सुपूजित तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ।।७।।

मुक्तजनोंके स्वामिरूप, पुरुषार्थचतुष्टयरूप फलको देनेवाले, प्रमथादि गणोंके स्वामी, स्तुतिप्रिय, नन्दीवाहन, गजचर्मको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले,

महेश्वर तथा दरिद्रतारूपी दुःखके विनाशक भगवान् शिवको मेरा नमस्कार है ॥८॥

वसिष्ठेन कृतं स्तोत्रं सर्वरोगनिवारणम् ।
सर्वसम्पत्करं शीघ्रं पुत्रपौत्रादिवर्धनम् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं स हि स्वर्गमवाप्नुयात् ॥९॥

॥ इति श्रीवसिष्ठविरचितं दारिद्र्ययदहनशिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

समस्त रोगोंके विनाशक तथा शीघ्र ही समस्त सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाले और पुत्र-पौत्रदि वंश-परम्पराको बढ़ानेवाले, वसिष्ठद्वारा निर्मित इस स्तोत्रका जो भक्त नित्य तीनों कालोंमें पाठ करता है, उसे निश्चय ही स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है ॥९॥

॥ इस प्रकार श्रीवसिष्ठविरचित दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

शिवाराधनासे महर्षि कपिलको सांख्य-शास्त्रकी प्राप्ति

विख्यात सिद्धर्षि कपिल प्रजापति कर्दम और देवहूतिजीके गर्भसे उत्पन्न भगवान् विष्णुके अवतार थे। ज्ञानकी प्राप्तिके लिये इन्होंने भगवान् आशुतोष शिवकी आराधाना की थी। कपिल भगवान् शिवके परम कृपापात्र थे। बिना शंकरकी कृपाके किसी प्राणीको भक्ति प्राप्त होनी दुर्लभ है। जिस मनुष्यकी भगवान् शिवमें दृढ़ भक्ति है, उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इनकी आराधनासे ज्ञानात्मा भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कपिलदेवको अपने दर्शन दिये। भगवान्‌का दर्शन पाकर वे मुक्तकण्ठसे स्तुति करते हुए बोले—'हे भगवन्! मैंने अनेक जन्मोंसे भक्तिपूर्वक आपकी आराधना की है। अब प्रसन्न होकर मुझे भवभयनाशक विशुद्ध ज्ञान दीजिये।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। विशुद्ध ज्ञान प्राप्तकर भगवान् कपिलने उत्तम सांख्यशास्त्रका प्रणयन किया। उन्होंने स्वयं कहा है—

कपिलश्च लतः प्राह सांख्यर्षिर्देवसम्मतः ।
मया जन्मान्यनेकानि भक्त्या चाराधितो भवः ॥
प्रीतश्च भगवान् ज्ञानं ददौ मम भवान्तकम् ।

(महा०, अनु० १८।४-५)

वह विलक्षण बालक स्वयं शिव थे

[घटित घरना]

मेरे अपने व्यक्तिगत जीवनकी दो-एक घटनाओंका उल्लेख करनेसे बहुतोंको शिव-चरित्र सहज ही समझमें आ जायगा। शारदीय जूजाके पश्चात् दीपावलीके समय काशीमें अन्नपूर्णाके मन्दिरमें अन्नकूट-उत्सव होता है। मां अन्नपूर्णाकी स्वर्णमयी मूर्ति उसी समय केवल तीन दिनके लिये सर्वसाधारणको दिखलायी जाती है। कई वर्ष पूर्वकी बात है। ऐसे ही समय, याद नहीं कहाँसे घूमते-घामते मैं काशीधाम आ पहुँचा। अन्नकूट देखनेके लिये मन अत्यन्त व्यग्र था। एक बार देखकर लौटनेके कुछ ही समय बाद पुनः लोगोंकी भीड़को हटाता हुआ मैं अन्नकूट देखने गया। स्वर्णनिर्मित अन्नपूर्णाकी मूर्ति तथा उसके साथ अन्यान्य मूर्तियाँ मुझे इतनी अच्छी लगीं, जिसका वर्णन नहीं कर सकता। मैं एकदम मुग्ध हो गया। परंतु एक विषयमें मेरे मनमें एक आशंक्का उठी। अन्नपूर्णाके समीप रौप्यनिर्मित विश्वनाथ की मूर्तिका साज भिखारीका होनेपर भी वह नितान्त ऐश्वर्यमण्डित था, यह भाव मुझे अच्छा न लगा। मन खराब होनेसे

मैं मन्दिर से बाहर निकल कर नीचे द्वारके निकट खड़ा हो गया। वहाँ मैं लोगोंकी भीड़ देखने लगा, उसी समय एक आठ वर्षका लड़का आकर मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगा और मुझसे बोला—'आपने अन्नपूर्णाकी मूर्तिके दर्शन नहीं किये?' मैं उस बालकके आग्रह और ताकीदपर 'हाँ' या 'ना' कुछ भी न बोल सका। वह मेरा हाथ पकड़कर मुझे ऊपर स्वर्ण-मूर्तिके दर्शन करनेके लिये ले चला। मैं चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला, परंतु लोगोंकी इस भीड़में इतना छोटा बालक मुझ-जैसे सबल और स्वस्थ-शरीर युवकको पकड़कर लिये जा रहा है, यह देखकर लोग क्या कहेंगे—इस बातका विचारकर मैं मन-ही-मन लज्जित हो रहा था। जो हो, मैं उसके पीछे-पीछे मन्दिरमें घुसा। वह मुझे अत्यन्त आग्रहपूर्वक मूर्तियोंका परिचय देने लगा। उस समय भी मैंने मनोवेदनाके कारण शिवमूर्तिकी ओर नहीं देखा। तत्पश्चात् हम दोनों बाहर दरवाजेके पास आये। बालकने कहा—'नीचे जो महामायाकी मूर्ति है, जान पड़ता है आपने उसके भी दर्शन नहीं किये।' बालक पुनः मेरा हाथ पकड़कर नीचे महामायाके निकट ले गया और बोला—'महामायाके दर्शन कीजिये, यहाँ चरणामृत लेना होता है।'

मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि यह बालक कौन है, इसका घर कहाँ है, मुझे कैसे पहचानता है? जो हो, मैंने चरणामृत लिया। बालकका परिचय जाननेके लिये उससे पूछनेको ज्यों ही मैंने पीछे फिरकर देखा तो उसे नहीं पाया। मानो एक ही सेकंडमें वह गायब हो गया। मैं अवाक् रह गया। तथापि उसे खोजनेके लिये बाहर निकला। कितने ही लोग मन्दिरसे बाहर निकल गये, परंतु मैंने उस बालकको कहीं नहीं पाया। मैं धीरे-धीरे अपने डेरेपर आकर सो रहा। कुछ समयके बाद समझमें आया, स्वयं विश्वनाथने मुझे यह बात समझा दी कि उनके समान

योगिश्रेष्ठ होना मेरे लिये कभी सम्भव नहीं। तथापि उन्होंने मानो कहा–'तुम सरल हृदयसे जो कुछ समझते हो, माँके बच्चेकी तरह माँका आश्रय लेकर चलते रहो।'

संदर्भ–उपरोक्त अनुभव (लेख) 'कल्याण' गीताप्रेस गोरखपुर से छपा शिवोपासना अंक के २५० नं० पेजपर 'शिवोपासनाकी आवश्यकता' नामक लेख का कुछ अंश है जो श्री ज्योतिः द्वारा लिखा हुआ है।

महर्षि वाल्मीकिकी शिव-शरणागति

जगत्प्रसिद्ध श्रीवाल्मीकीय रामायणके रचयिता आदिकवि महर्षि वाल्मीकिको भला कौन नहीं जानता? तमसा नदीके तीरपर महर्षि वाल्मीकिका आश्रम था। एक समय यज्ञमें वेदसम्बन्धी विवाद होनेपर अग्निहोत्री मुनियोंने कुपित होकर उन्हें 'ब्रह्महत्या' का शाप दे दिया। जिससे ब्रह्महत्याके पापमें लिप्त होकर उन्होंने बहुत दिनोंतक व्याधका कार्य किया। कुछ कालके पश्चात् वे भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले आशुतोष भगवान् शंकरकी शरणमें गये और उनकी आराधनासे समस्त पापोंसे शीघ्र ही मुक्त हो गये। त्रिपुरहन्ता भगवान् महेश्वरने मुनिपर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया–'जाओ, तुम्हारी विमल कीर्ति तीनों लोकमें अमर होगी और तुम्हारा महाकाव्य संसारमें अद्वितीय तथा आदर्श होगा।' फिर क्या था, वे व्याधसे महर्षि वाल्मीकि हो गये। भगवान् शंकरके अन्तर्धान होते ही महर्षि वाल्मीकिको एक अद्भुत प्रकारका ज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्होंने उस समय शिवभक्त भगवान् श्रीरामचन्द्रका जो यशोगान किया, वह रामायणकी कथाके रूपमें आज विश्वमें भगवद्भक्तिकी अजस्र धारा बहा रहा है।

महाभारतमें इस वृत्तान्तका वर्णन इस प्रकार हुआ है—

वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः ।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानीति ॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत ।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः ॥
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः ।
आह मां त्रिपुरघ्नो यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति ॥

(महाभा०, अनु० १८।८-१०)

भील दंपति की शिवभक्ति

भगवान कब, किस रूप में आकर अपने भक्तों को दर्शन दे दें, यह कहना कठिन है। यदि मनुष्य अपने धर्म में अचल रहता है तो भगवत्कृपा अवश्य प्राप्त करता है।

शिवपुराण में एक कथा आती है–

आबू (राजस्थान) के पास एक कंदरा में आहुक और आहुका नामक भील दंपति रहते थे। दोनों पति-पत्नी भगवान शिव के भक्त थे और शिव की आराधना में लगे रहते थे। वे वहाँ आने वाले अतिथि-अभ्यागत की सेवा भी बड़े प्रेम से करते थे।

एक दिन उनकी परीक्षा लेने के हेतु से भगवान् शिव एक यति (साधु) का रूप लेकर उनकी कंदरा के पास आये एवं बोले–

"आज रात के लिए थोड़ा भोजन एवं आश्रय चाहता हूँ। रात में यहाँ रहने के लिए मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही मैं यहाँ से चला जाऊँगा।"

आहुक ने कहा–"महाराज! मैं लकड़ियाँ बेचकर भोजन का कुछ सामान लाया हूँ। हम तीनों इसी में से खा लेंगे लेकिन आश्रय के लिए आपको कोई दूसरी जगह ढूँढनी पड़ेगी क्योंकि मेरी कंदरा में स्थान बहुत ही थोड़ा है।"

साधु:–"अगर आश्रय की व्यवस्था नहीं है तो मैं भोजन भी नहीं करूँगा।"

ऐसा कहकर वे जाने लगे। तब भील की पत्नी आहुका ने अपने पति से कहा:–"स्वामी! अतिथि तो देवता के समान होता है। आप अतिथि को इस तरह निराश न लौटाइये। अन्यथा हमारे गृहस्थधर्म के पालन में बाधा पहुँचेगी। आप साधुबाबा के साथ सुखपूर्वक कंदरा में रहिये। इस नन्हीं–सी गुफा में हम तीन तो नहीं रह सकते इसलिए मैं बाहर ही रहती हूँ।"

पत्नी की बात सुनकर भील ने सोचा कि स्त्री को घर से बाहर निकालकर मैं भीतर कैसे रह सकता हूँ तथा साधुबाबा का अन्यत्र जाना भी मेरे लिए अधर्म ही होगा। अतः मुझे ही कंदरा के बाहर रहना चाहिए। जो होनी होगी वह तो होकर ही रहेगी। उसने साधु से कहा:–

"ठीक है महाराज! आप यहीं विश्राम भी कीजिये।"

फिर भोजन आदि से निवृत्त हो भील ने पत्नी को समझा–बुझाकर कंदरा में भेज दिया और स्वयं बाहर पहरा देने लगा। रात में झोंके खाते भील पर किसी हिंसक पशु ने आक्रमण किया जिससे भील की मृत्यु हो गयी।

प्रातःकाल उठकर जब साधु ने देखा कि किसी हिंसक पशु ने भील को मार डाला है तब उनको बड़ा दुःख हुआ। वे भील की पत्नी से बोले:–

"हे देवी! मेरे कारण ही आहुक की मृत्यु हुई है। तुम लोगों ने मुझे आश्रय दिया लेकिन तुम्हारा पति चल बसा।"

साधु को दुःख से व्याकुल देखकर आहुका ने कहा "स्वामीजी! आप दुःखी किसलिए हो रहे हैं? इन भीलराज का तो इस समय कल्याण ही हुआ है। ये धन्य और कृतार्थ हो गये जो इन्हें ऐसी मृत्यु प्राप्त हुई। मैं भी इनका अनुसरण करूँगी। अतः आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिए एक चिता तैयार कर दें।"

साधु ने स्वयं चिता तैयार की और भीलनी ने अपने धर्म के अनुसार उसमें प्रवेश किया। उसी समय भगवान शंकर अपने वास्तविक स्वरूप में उसके सामने प्रगट हो गये और बोले–

"तुम धन्य हो, धन्य हो! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे लिए कुछ भी अदेय नहीं है।"

भगवान शिव के दर्शन एवं उनके वचनों को सुनकर आहुका ऐसी आनंदविभोर हो गयी कि उसे किसी बात की सुध न रही। संसार-सुख भोगने की, पति को जिलाने की कोई वासना उसके चित्त में पैदा नहीं हुई। निर्वासनिक चित्त भगवान को विशेष प्रिय होता है। उसकी इस अवस्था को देखकर भगवान शिव प्रसन्न हो गये और उसके न माँगने पर भी उसे वर देते हुए बोलेः–

"मेरा जो यतिरूप है यह भावी जन्म में हंसरूप में प्रगट होगा और प्रसन्नतापूर्वक तुम दोनों का परस्पर संयोग करायेगा। यह भील अगले जन्म में निषध देश की उत्तम राजधानी में राजा वीरसेन का श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय नल के नाम से इसकी ख्याति होगी और तुम विदर्भ नगर में भीमराज की पुत्री दमयंती बनोगी। तुम दोनों मिलकर राजभोग भोगने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करोगे।"

ऐसा कहकर भगवान शिव उसी समय से वहाँ लिंगरूप में स्थित हो गये। वह भील अपने धर्म से विचलित नहीं हुआ था, इसलिए उस लिंग को 'अचलेश' की संज्ञा दी गयी। अचलेश्वर महादेव भील की अचल श्रद्धा की याद दिलाते हैं।

भगवान शिव के वरदान के प्रभाव से वे ही आहुक और आहुका अगले जन्म में नल–दमयंती बने। आज भी माउंट आबू में अचलेश्वर महादेव का मंदिर है जिसका यात्री लोग दर्शन करते हैं। जिस कंदरा में वे रहते थे वह कंदरा 'नल गुफा' के नाम से प्रसिद्ध है।

महान् शिवभक्त महर्षि गर्गाचार्यकी शिवोपासना

महर्षि गर्ग आङ्गिरस गोत्रके एक प्रसिद्ध मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेद ६।४७ सूक्तके द्रष्टा भगवान् गर्ग ही हैं। इनका प्रसिद्ध आश्रम कुरुक्षेत्रमें देवनदी सरस्वतीके तटपर निर्दिष्ट है। ऐसी प्रसिद्धि है कि इन्होंने यहीं ज्ञान प्राप्त किया और ज्योतिषशास्त्रके ग्रन्थों की रचना की। गर्गसंहिता-जैसा परम पवित्र ऐतिहासिक ग्रन्थ महर्षि गर्गाचार्यकी ही कृति है। महर्षि गर्ग परम शिव भक्त थे। ये महाराज पृथुके और यदुवंशियोंके गुरु तथा कुलपुरोहित रहे हैं। गोत्रकार ऋषियोंमें आपकी गणना विशिष्ट रूपमें होती है। यह प्रसिद्ध है कि भगवान् गर्गाचार्यने भगवान् शंकरकी आराधना से श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त किया था। भगवान् शंकरमें इनकी अटूट श्रद्धा एवं भक्ति थी। महाभारतमें वर्णन आया है कि इन्होंने सरस्वती नदीके तट पर मानस यज्ञ करके भगवान् शिवको संतुष्ट किया था। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने इन्हें चौंसठ कला का अद्भुत ज्ञान प्रदान किया। शिवकी कृपासे इन्हें इनके ही समान एक सहस्र ब्रह्मवादी पुत्र हुए और पुत्रोंसहित दस लाख वर्षकी आयु प्राप्त हुई।

(महाभा०, अनु० १८।३८-३९)

शिवभक्त उपमन्यु की शिव-साधना

भक्तराज उपमन्यु परम शिवभक्त वेदतत्त्व के ज्ञाता महर्षि व्याघ्रपादे के बड़े पुत्र थे। एक दिन उपमन्युने माता से दूध माँगा। घर में दूध था नहीं। माता ने चावलों का आटा जल में घोलकर उपमन्यु को दे दिया। उपमन्यु मामा के घर दूध पी चुके थे। अतएव उन्होंने यह जानकर कि यह दूध नहीं है, माता से कहा—'माँ! यह तो दूध नहीं है।' ऋषिपत्नी झूठ बोलना नहीं जानती थी, उन्होंने कहा—'बेटा! तू सत्य कहता है, यह दूध नहीं है। नदी-किनारे, वनों और पहाड़ों की गुफाओं में जीवन बितानेवाले हम तपस्वी मनुष्यों के यहाँ दूध कहाँ से मिल सकता है, हमारे तो सर्वस्व श्रीशिवजी महाराज हैं। तू यदि दूध चाहता है तो उस जगन्नाथ श्रीशिवजी को प्रसन्न कर। वे प्रसन्न होकर तुझे दूध-भात देंगे।'

माता की बात सुनकर बालक उपमन्यु ने पूछा—'माँ! भगवान् श्रीशिवजी कौन हैं? कहाँ रहते हैं? उनका कैसा रूप है, मुझे वे किस प्रकार मिलेंगे और उन्हें प्रसन्न करने का उपाय क्या है?'

बालक के सरल वचनों को सुनकर स्नेहवश माता की आँखों में आँसू भर आये। माता ने उसे शिवतत्त्व बतलाया और कहा—'तू उनका

भक्त बन, उनमें मन लगा, उनमें विश्वास रख, एकमात्र उनकी शरण हो जा, उन्हीं का भजन कर, उन्हीं को नमस्कार कर। यों करने से वे कल्याणस्वरूप तेरा निश्चय ही कल्याण करेंगे। उनको प्रसन्न करने का महामन्त्र है– **'ॐ नमः शिवाय।'**

माता से उपदेश पाकर बालक उपमन्यु शिव को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प करके घर से निकल पड़े। वन में जाकर प्रतिदिन **'ॐ नमः शिवाय'** मन्त्र के द्वारा वन के पत्र-पुष्पों से भगवान् शिव की पूजा करते और शेष समय मन्त्र-जप करते हुए कठोर तप करने लगे। वन में अकेले रहनेवाले तपस्वी उपमन्यु को पिशाचों ने बहुत कुछ सताया, परंतु उपमन्यु के मन में न तो भय हुआ और न ही विघ्न करनेवालों के प्रति क्रोध ही। वे उच्च स्वर से **'ॐ नमः शिवाय'** मन्त्र का कीर्तन करने लगे। इस पवित्र मन्त्र के सुनने से मरीचि के शाप से पिशाचयोनि को प्राप्त हुए, उपमन्यु के तप में विघ्न करने वाले वे मुनि पिशाचयोनि से छूटकर पुनः मुनिदेह को प्राप्त हो कृतज्ञता के साथ उपमन्यु की सेवा करने लगे। तदनन्तर देवताओं के द्वारा उपमन्यु की उग्र तपस्याका समाचार सुनकर सर्वान्तर्यामी भक्तवत्सल भोलेनाथ श्रीशंकरजी भक्त का गौरव बढ़ाने के लिये उनके अनन्यभाव की परीक्षा करने की इच्छा से इन्द्र का रूप धारण कर श्वेतवर्ण ऐरावत पर सवार हो उपमन्यु के समीप जा पहुँचें। मुनिकुमार भक्त श्रेष्ठ उपमन्यु ने इन्द्ररूपी भगवान् महादेव को देखकर धरती पर सिर टेक कर प्रणाम किया और कहा–'देवराज! आपने कृपा करके स्वयं मेरे समीप पधार कर मुझपर बड़ी कृपा की हैं बतलाइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' इन्द्ररूपी परमात्मा शंकर ने प्रसन्न होकर कहा–'हे सुव्रत! तुम्हारी इस तपस्या से मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे मनमाना वर माँगो, तुम जो कुछ माँगोगे, वही मैं तुम्हें दूँगा।'

इन्द्र की बात सुनकर उपमन्यु ने कहा—'देवराज! आपकी बड़ी कृपा है, परंतु मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता। मुझे न तो स्वर्ग चाहिये, न ऐश्वर्य ही। मैं तो भगवान् शंकर का दासानुदास बनना चाहता हूँ। जबतक वे प्रसन्न होकर मुझे दर्शन नहीं देंगे, तबतक मैं तप को नहीं छोडूँगा। त्रिभुवनसार, सबके आदिपुरुष, अद्वितीय, अविनाशी भगवान् शिव को प्रसन्न किये बिना किसी को स्थिर शान्ति नहीं मिल सकती। यदि मेरे दोषों के कारण मुझे इस जन्म में भगवान् के दर्शन न हों और मेरा फिर जन्म हो तो उसमें भी भगवान् शिव पर ही मेरी अक्षय और अनन्य भक्ति बनी रहे।'

इन्द्र से इस प्रकार कहकर उपमन्यु फिर अपनी तपस्या में लग गये। तब इन्द्ररूपधारी शंकर ने उपमन्यु के सामने अपने गुणों द्वारा अपनी ही निन्दा करना आरम्भ किया। मुनि को शिवनिन्दा सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ, कभी क्रोध न करने वाले मुनि के मन में भी इष्ट की निन्दा सुनकर क्रोध का संचार हो आया और उन्होंने इन्द्र का वध करने की अच्छा से अघोरास्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लेकर इन्द्र पर फेंकी और शिवनिन्दा सुनने के प्रायश्चित्तस्वरूप अपने शरीर को भस्म करने के लिये आग्नेयी धारणा का प्रयोग करने लगे।

उनकी यह स्थिति देखकर भगवान् शंकर परम प्रसन्न हो गये। भगवान् के आदेश से 'आग्नेयी धारणा' का निवारण हुआ।

सर्वव्याधियोंके नाश एवं दीर्घायुकी प्राप्तिके लिये महामृत्युंजयका विधान

भगवान् श्रीशंकरके 'रुद्राध्याय' तथा 'मृत्युंजय' महामन्त्रसे भारतके कोने-कोनेमें अभिषेक किया जाता है। श्रावणमें तो इसकी बहार देखने ही योग्य होती है। यहाँ उसी 'मृत्युंजय' महामन्त्रकी अर्थ-गम्भीरतापर कुछ विचार किया जा रहा है। यह विचार निश्चय ही परम पुण्यप्रद है।

'ॐ हौं जूँ सः। ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः ॐ। सः जूँ हौं ॐ' यह सम्पुटयुक्त मन्त्र है।

ॐकारका प्रतीक शिवलिङ्ग है, उसीके ऊपर अविच्छिन्न-अनवरत जलधारा के प्रवाहवत् अपनी दृष्टि स्थिर करते हुए विश्वासपूर्वक मृत्युंजय-महामन्त्र का जप करता रहे तो ध्यानावस्था प्रत्यक्ष खड़ी हो जाती है और एक विलक्षण आनन्द की अनुभूति होती है।

सृष्टिके आदि, मध्य और अन्त-तीनों 'हौं' और 'जूँ' से अपने समक्ष उपस्थित करते हुए त्रिलोकीमें जप करनेवाला व्यक्ति श्रीत्र्यम्बकेश्वरके प्रति अपने-आपका समर्पण करता है। त्र्यम्बकेश्वरकी कृपारूपी सुगन्ध फैल रही है और उपासकके रोम-रोममें ऐसी स्फूर्ति होने लगती है कि

उसका आध्यात्मिक प्रभाव छिप नहीं सकता। जैसे इन्द्रायण (तूँबे) की बेल सूख जाने पर फल बन्धनसे मुक्त होकर आस-पासकी अनन्तता में छिप जाता है, उसी प्रकार जप करनेवाला उपासक अपनी मोक्षकी अवस्थाको प्रत्यक्ष कर सकता है।

'एकोऽहं बहु स्याम्'—परब्रह्मकी यह इच्छा होती है और महाप्राणकी अलौकिक गति प्रस्तुत होती है। उसका सूचन महाप्राण अक्षर 'ह'से होता है। प्रकृति विकृत होने लगे, पञ्चतन्मात्रा उद्भूत हों, शब्दगुण आकाश सृष्टिको झेलने के लिये तत्पर हो जाय, उस दृश्यका आभास 'औं' की ध्वनि करा रही है। ज्=जन्म, ऊ=उद्भव-विकास-विस्तार, ँ = ० - शून्य-प्रलय। इस प्रकार 'जूँ' सृष्टिकी तीनों अवस्थाओंका दिग्दर्शन करा रहा है। सः=पुरुष=विराट्—यही तो प्रलयके समय अवशिष्ट रहता है। **'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्'** के साथ **'यथापूर्वमकल्पयत्'** इन वाक्योंका स्मरण ऐसे समय क्यों नहीं होगा? ऐसी सृष्टि भूर्भुवः स्वःकी त्रिलोकी है। उस त्रिलोकीका निवासी उपासक त्र्यम्बकेश्वरके सामने जपयज्ञ कर रहा है और फलस्वरूप वह सहज ही अपुनरावृत्तिवाली मुक्ति प्राप्त करता है।

ऊपर कहा गया है कि शिवलिङ्ग ॐकार का प्रतीक है, वह कैसे है— यह जानने के लिये उ, ‿०,ँ = ॐ इनके तीन भागों पर विचार करे। उपासक पूर्वाभिमुख बैठता है। जल झेलनेवाला भाग 'उ' उत्तर दिशा की ओर जल को बहाकर ले जाता है। '‿०' यह भाग आधार है, जो जलहरी को ऊँचे उठाये रहता है। 'ँ' यह भाग लिङ्ग के रूप में ऊपर को विराजमान रहता है। किसी भी शिवमन्दिर में जाकर पूर्वाभिमुख रहकर इस दृश्य का साक्षात्कार किया जा सकता है।

महामृत्युंजय-मन्त्रकी महिमा और जपविधि

भगवान् मृत्युंजयके जप-ध्यानसे मार्कण्डेयजी, राजा श्वेत आदिके कालभयनिवारणकी कथा शिवपुराण, स्कन्दपुराण-काशीखण्ड, पद्मपुराण-

उत्तराखण्ड-माघमाहात्म्य आदिमें आती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें भी मृत्युंजय-योग मिलते हैं। मृत्युको जीत लेनेके कारण ही इन मन्त्रयोगोंको 'मृत्युंजय' कहा जाता है–

मृत्युर्विनिर्जितो यस्मात् तस्मान्मृत्युंजयः स्मृतः ।

(रसे० सारसंग्रह, अ० २ ज्व० वि० ९)

मन्त्रशास्त्रमें वेदोक्त '**त्र्यम्बकं यजामहे०**' (ऋक् ७।५९।१२, यजु० ३।६०, अथर्व० १४।१।१७, तैत्ति० सं० १।८।६।१२, निरुक्त १४।३५) इत्यादिको ही मृत्युंजय नाम प्राप्त है। यों पुराणोंमें, मन्त्रमहोदधि, मन्त्रमहार्णव, शारदातिलक, विविध निबन्ध-ग्रन्थोंमें तथा मृत्युंजय-तन्त्र, मृत्युंजयकल्प, मृत्युंजयपञ्चाङ्ग आदिमें इस मन्त्रका भाष्य, विधान, पटल, पद्धति, स्तोत्र आदि सब कुछ मिलते हैं। शिवपुराण-सतीखण्ड ३८।२१।४२ में इसका विस्तृत भाष्य है। वहाँ इसीको शुक्राचार्यकी 'मृतसंजीवनीविद्या' कहा गया है* तथा स्वयं शुक्राचार्यने ही इसका दधीचिको उपदेश किया है। 'विष्णुधर्मोत्तर' आदिमें इसके हवनादिके भेदसे अनेक अर्थ-कामसाधक आदि दूसरे भी काम्य प्रयोग बतलाये गये हैं। यथा–

त्र्यम्बकं यजामहेति होमः सर्वार्थसाधकः ॥
धत्तूरपुष्पं सघृतं तथा हुत्वा चतुष्पथे ।
शून्ये शिवालये वापि शिवात् कामानवाप्नुयात् ॥
हुत्वा च गुग्गुलं राम स्वयं पश्यति शंकरम् ।

(विष्णुधर्म० २।१२५।२३-२५)

ऋग्विधान आदिमें भी ऐसा ही बतलाया गया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण-प्रकृतिखण्डके ५९वें अध्यायमें कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्णने अङ्गिराकी पत्नीको मृत्युंजय-ज्ञान दिया था। यहाँ संक्षेपमें उसके जपकी विधि दी जा रही है। यद्यपि तन्त्रसार, शारदातिलक आदि एवं मन्त्रमहार्णव

आदिमें एक साथ ही त्र्यक्षर, पञ्चाक्षर आदि कई मृत्युंजय-मन्त्र बतलाये गये, तथापि यहाँ सर्वाधिक प्रचलित 'त्र्यम्बक-मन्त्र'के ही विनियोग, ध्यान आदि लिखे जा रहे हैं। इससे रोग, दुःख-दरिद्र्य आदिका नाश तथा सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है।

साधकको चाहिये कि किसी पवित्र स्थानमें स्नान, आचमन, प्राणायाम, गणेशस्मरण, पूजन-वन्दनके बाद तिथि-वारादिका उच्चारण करते हुए इस प्रकार संकल्प करे-

अमुकोऽहं अमुकवासरादौ स्वस्य (यजमानस्य वा) निखिलारिष्टनिवृत्तये महामृत्युंजयमन्त्रजपमहं करिष्ये।

तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर इस प्रकार न्यासादि करना चाहिए-

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युंजयमन्त्रस्य वामदेवकहोलवसिष्ठा ऋष्यः पंक्तिगायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, सदाशिवमहामृत्युंजयरुद्रो देवता, ह्रीं शक्तिः, श्रीं बीजम्, महामृत्युंजयप्रीतये ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

-यों कहकर हाथका जल छोड़ दे।

पुनः वामदेवकहोलवसिष्ठऋषिभ्यो नमः, मूर्ध्नि। पङ्क्तिगायत्र्युष्णि- गनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, वक्त्रे। सदाशिवमहामृत्युंजयरुद्रदेवतायै नमः, हृदि। ह्रीं शक्तये नमः, लिङ्गे। श्रीं बीजाय नमः, पादयोः।

उपर्युक्त मन्त्रोंसे सिर, मुख, हृदय, लिङ्ग तथा चरणका स्पर्श करे।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे पहले अँगूठे आदिका स्पर्श करते हुए करन्यास करके फिर उन्हीं मन्त्रोंसे हृदयादिको स्पर्श करते हुए हृदयादिन्यास करना चाहिए।

मन्त्र	करन्यास	हृदयादि-न्यास
१. ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः त्र्यम्बकं ॐ नमो भगवते रुद्राय शूलपाणये स्वाहा।	अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (तर्जनीसे अँगूठेको छूए)	हृदयाय नमः। (पाँच अँगुलियों से हृदयका स्पर्श करे।)
२. ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः यजामहे ॐ नमो भगवते रुद्राय अष्टमूर्तये मां जीवय।	तर्जनीभ्यां नमः। (दोनों तर्जनी अँगुलियों को अँगूठेसे मिलाये)	शिरसे स्वाहा। (सिरका स्पर्श करे।)
३. ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं ॐ नमो भगवते रुद्राय चन्द्रशिरसे जटिने स्वाहा।	मध्यमाभ्यां नमः	शिखायै वषट्। (शिखा छूए।)
४. ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः ऊर्व्वारुकमिव बन्धनात् ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिपुरान्तकाय ह्रां ह्रौं।	अनामिकाभ्यां नमः।	कवचाय हुम्। (दाहिने हाथसे बायाँ कंधा तथा बायें हाथसे दाहिना कंधा छूए।)
५. ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मृत्योर्मुक्षीय ॐ नमो भगवते रुद्राय त्रिलोचनाय ऋग्यजुःसाममन्त्रय।	कनिष्ठिकाभ्यां नमः।	नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. ॐ ह्रौं ॐ जूँ सः भूर्भुवः स्वः मामृतात् ॐ नमो भगवते रुद्राय अग्नित्रयाय उज्ज्वलज्वाला मां रक्ष रक्ष अघोराय।	करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।	अस्त्राय फट्

इस मन्त्रके जपमें ध्यान परमावश्यक है। शिवपुराणमें यह ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—

हस्ताम्भोज्युगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ ।
अक्षस्त्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्त्रवत्
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युंजयम् ॥

(सतीखं० ३८।२४)

ध्यानका स्वरूप यह है कि 'भगवान् मृत्युंजयके आठ हाथ हैं। वे अपने ऊपरके दोनों करकमलों से दो घड़ोंको उठाकर उसके नीचेके दो हाथोंसे जलको अपने सिरपर उड़ेल रहे हैं। सबसे नीचेके दो हाथोंमें भी दो घड़े लेकर उन्हें अपनी गोदमें रख लिया है। शेष दो हाथों में वे रुद्राक्षकी माला तथा मृगी-मुद्रा धारण किये हुए हैं। वे कमलके आसनपर बैठे हैं और उनके शिरःस्थ चन्द्रसे निरन्तर अमृतवृष्टिके कारण उनका शरीर भींगा हुआ है। उनके तीन नेत्र हैं तथा उन्होंने मृत्युको सर्वथा जीत लिया है, उनके वामाङ्गभाग में गिरिराजनन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके रुद्राक्षमालासे मन्त्रका जप करना चाहिये। मन्त्रका स्वरूप इस प्रकार है–

मन्त्र

ॐ हौं जूँ सः, ॐ भूर्भुवः स्वः । ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । स्वः भुः ॐ। सः जूँ हौं ॐ । यह सम्पुट-युक्त मन्त्र है। इसका प्रायः सवा लाख जप सर्वार्थसाधक माना गया है। जपके बाद इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये–

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥
मृत्युंजय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम् ।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥

जपके अन्त में दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन तथा ब्राह्मण-भोजन आदि करना-कराना चाहिये।

सर्वव्याधिनाशके लिये लघु मृत्युंजय-जप

ॐ जूँ सः (नामक जिसके लिये किया जाय) पालय पालय सः जूँ ॐ। इस मन्त्रका ११ लाख जप तथा एक लाख दश हजार दशांशका जप करनेसे सब प्रकारके रोगोंका नाश होता है। इतना न हो तो कम-से-कम सवा लाख जप और साढ़े बारह हजार दशांश जप अवश्य करना चाहिये। इसके साथ ही आगे लिखा यन्त्र भी हाथमें बाँध देना चाहिये।

श्रीमहामृत्युंजय-कवच-यन्त्रम्

भोजनपत्र पर अष्टगन्ध से यन्त्र लिखकर गुगलका धूप देकर पुरुषके दाहिने और स्त्रीके बायें हाथमें बाँध देना चाहिये। गोत्र, पिता का नाम, पुत्र या पुत्री (रोगी) का नाम यथास्थान लिख देना चाहिये। यन्त्र इस प्रकार है-

बिल्वपत्र से शिवलिंग के पूजन की महिमा
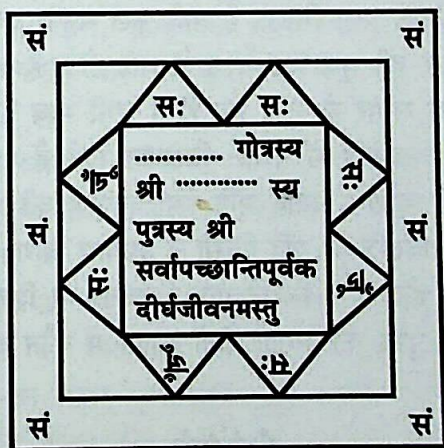
शास्त्रों में आता है कि सौ करोड़ जन्मों में उत्पन्न हुई पुण्यराशि के प्रभाव से कभी भगवान शंकर की बिल्वपत्र से पूजा करने का अवसर प्राप्त होता है। दस हजार वर्षों तक जिसने गंगा जी के जल में स्नान किया है, उसको जो फल मिलता है वही फल मनुष्य एक बार बिल्वपत्र से भगवान शंकर की पूजा करके प्राप्त कर लेता है। प्रत्येक युग में जो-जो पुण्य इस संसार से लुप्त हुए हैं वे सभी माघ (फालगुन) कृष्ण चतुर्दशी अर्थात शिवरात्रि में पूर्णतः विद्यमान रहते हैं। लोक में ब्रह्मा आदि देवता और वशिष्ठ आदि मुनि इस चतुर्दशी की भूरी-भूरी प्रशंसा करते हैं। इस शिवरात्रि पर यदि किसी ने उपवास किया तो उसे सौ यज्ञों से अधिक पुण्य होता है। जिसने एक बिल्वपत्र से शिवलिंग का पूजन किया है, उसके पुण्य की समता तीनों लोकों में कौन कर सकता है ?

बिल्वाष्टकम्

त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम् ।
त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
त्रिशाखैर्बिल्वपत्रैच्क्ष ह्यच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः ।
शिवपूजां करिज्यामि बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
अखण्डबिल्वपत्रेण पूजिते नन्दिकेश्वरे ।
शुद्ध्यन्ति सर्वपापेभ्यो बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
शालग्रामशिलामेकां विप्राणां जातु अर्पयेत् ।
सोमयज्ञमहापुण्यं बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
दन्तिकोटिसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च ।

तीन दलवाला, सत्त्व, रज एवं तमःस्वरूप, सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि–त्रिनेत्रस्वरूप और आयुधत्रय स्वरूप, तथा तीनों जन्मों के पापों को नष्ट करने वाला बिल्वपत्र मैं भगवान् शिव के लिये समर्पित करता हूँ॥

छिद्ररहित, सुकोमल, तीन पत्ते वाले, मङ्गल प्रदान करने वाले बिल्वपत्रसे मैं भगवान् शिव की पूजा करूँगा । यह बिल्वपत्र शिवको समर्पित करता हूँ ॥

अखण्ड बिल्वपत्र से नन्दिक्श्वर भगवान् की पूजा करने पर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर शुद्ध हो जाते हैं । मैं बिल्वपत्र शिव को समर्पित करता हूँ ॥

मेरे द्वारा किया गया भगवान् शिवको यह बिल्वपत्रका समर्पण, कदाचित् ब्राह्मणों को शालीग्राम की शिलाके समान तथा सोमयज्ञ के अनुष्ठान के समान महान् पुण्यशाली हो । (अतः मैं बिल्वपत्र भगवान् शिव को समर्पित करता हूँ।)

मेरे द्वारा किया गया भगवान् शिव को यह बिल्वपत्रका समर्पण हजारों करोड़ गजदान, सैकड़ों वाजपेय यज्ञ के अनुष्ठान तथा करोड़ों कन्याओं

के महादान के समान हो। (अतः मैं बिल्वपत्र भगवान् शिवको समर्पित करता हूँ।)

कोटिकन्यामहादानं बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
लक्ष्मयाः स्तनत उत्पन्नं महादेवस्य च प्रियम ।
बिल्ववृक्षं प्रयच्छामि बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
दर्शनं बिल्ववशक्षस्य स्पर्शनं पापनाशनम् ।
अघोरपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
मूलतो ब्रह्मरूपाय मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय बिल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
बिल्वाष्टकमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकमवाप्नुयात् ॥

॥ इति बिल्वाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

विष्णु–प्रिया भगवती लक्ष्मीके वक्षःस्थलसे प्रादुर्भूत तथा महादेवजीके अत्यन्त प्रिय बिल्ववृक्षको मैं समर्पित करता हूँ, यह बिल्वपत्र भगवान् शिवको समर्पित है ।

बिल्ववृक्षका दर्शन और उसका स्पर्श समस्त पापों को नष्ट करनेवाला तथा शिवापराधका संहार करनेवाला है। यह बिल्वपत्र भगवान् शिवको समर्पित है ।

बिल्वपत्रका मूलभाग ब्रह्मारूप, मध्यभाग विष्णुरूप एवं अग्रभाग शिवरूप है, ऐसा बिल्वपत्र भगवान् शिवको समर्पित है ।

जो भगवान् शिवके समीप इस पुण्य प्रदान करनेवाले 'बिल्वाष्टक' का पाठ करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर अन्त में शिवलोकको प्राप्त करता है ।

॥ इस प्रकार बिल्वाष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

महान् शिवभक्त गन्धर्वराज पुष्पदन्तकी शिवाराधना

परम शिवभक्तोंकी गणनामें गन्धर्वराज पुष्पदन्तका नाम विशेष आदरके साथ लिया जाता है। 'शिवमहिमा:स्तोत्र' यह शिवविषयक साहित्यका अत्यन्त विशिष्ट और प्रधान अङ्ग है। इसके रचयिता परम शिवभक्त गन्धर्वराज पुष्पदन्त ही थे। शिवकी यश-भागीरथीमें उनकी पवित्र वाणीने अवगाहन कर शैव जगत्को जो रत्न प्रदान किये हैं, वे भक्ति-साहित्यकी श्रीवृद्धिमें सदा अमूल्य योगदान देते रहेंगे।

गन्धर्वराज-पुष्पदन्त प्रतिदिन शिवकी आराधनाके लिये प्रातःकाल ही एक राजाके उपवनसे सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्प तोड़ लाया करते थे। राजा पुष्पोंको न पाकर मालियोंको कठोर दण्ड दिया करता था। मालियोंने बड़े-बड़े प्रयत्न किये, पर फूल ले जानेवालेका पता नहीं लगता था। वे सब इस निर्णयपर पहुँचे कि फूल ले जानेवाला उपवनमें आते ही किसी विशेष शक्तिकी कृपासे अदृश्य हो जाया करता है। सचिवोंने समस्याका समाधान निकाला, सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि 'उपवनके चारों और शिवनिर्माल्या फैला दिया जाय, शिव-निर्माल्यको लाँघते ही चोरकी अदृश्य होनेकी अन्तर्धानिकशक्ति क्षीण हो जायगी।' ऐसा ही किया गया।

गन्धर्वराजको इस योजनाका ज्ञान न था। निर्माल्यका उल्लङ्घन करते ही मालियोंने देख लिया। वे पकड़ लिये गये और कारागारमें डाल दिये गये।

उन्हें जब यह पता चला कि 'मैंने शिव-निर्माल्य लाँघकर महान् अपराध किया है, तब उन्होंने भगवान् आशुतोषको प्रसन्न करने और उनकी दया प्राप्त करनेका दृढ़ संकल्प किया। एक दीन-हीनकी तरह, असमर्थ और सर्वथा नष्ट होकर गन्धर्वराजने भगवान् शिवका कारागारमें स्मरण किया।' 'अपराध-मार्जनका एकमात्र उपाय शिवाराधन ही हो सकता है'-ऐसा निश्चयकर उन्होंने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये स्तोत्र रचा। आशुतोष भगवान् भोलेनाथकी तो गति न्यारी ही है, भक्तने सच्चे हृदयसे पुकारा था, योगियोंकी अखण्ड समाधि, मुनियों और ध्यानी ज्ञानियोंकी तपस्याकी भी उपेक्षा कर देनेवाले शंकर भक्तकी पुकारपर दौड़ पड़े। कारागारमें दिव्य प्रकाश छा गया। गन्धर्वराजने देखा कि भगवान् शिवके मस्तकपर गङ्गा मुस्कुरा रही हैं, कण्ठ नीला है, गौर वर्णपर सर्पोंकी मालाएँ बड़ी सुन्दर लग रही हैं, गजकी खालसे प्रतिक्षण उनकी सुन्दरता बढ़ती जा रही है। लोक-लोकान्तरकी समस्त सम्पदा उनके चरणोंपर लोट रही है। भगवान् शिवके साक्षात्कारने उनकी भीषण तपस्याको सफल कर दिया, उनका अपराध मिट गया। उन्होंने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की। चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ाकर निवेदन किया-'भगवन्! आपकी महिमाकी परमावधिको न जानते हुए यदि मेरी स्तुति अनुचित है तो सर्वज्ञ ब्रह्मा आदिकी वाणी भी तो पहले आपके यशःस्तवनमें थक चुकी है। ऐसी अवस्थामें स्तुति करनेवालेपर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता। आपके स्तोत्रमें मेरा उद्योग अखण्ड और निर्विघ्न हो।' भगवान् शंकरने भक्तको अभयदान दिया। उनके जन्म-जन्मके बन्धन कट गये। दूसरे दिन राजाने कारागारमें स्वयं उपस्थित होकर उनके दर्शनसे अपने सौभाग्यकी सराहना की, जिन्हें भगवान् शिवने

अपने दिव्य दर्शन से मुक्त कर दिया, उनको कारागारमें बंद रखनेका साहस दूसरा व्यक्ति भला, किस तरह कर सकता! राजाने उनसे अपने अपराधके लिये क्षमा माँगी।

गन्धर्वराज पुष्पदन्तकी गणना महान् शिवभक्तोंमें की जांती है। उन्होंने प्रभासक्षेत्रसे 'पुष्पदन्तेश्वर' शिवलिङ्गकी स्थापना की थी। उन्होंने शिवमहिम्नःस्तोत्रके रूपमें जो साहित्य दान किया है, उससे असंख्य जीवोंका कल्याण हो रहा है। शिवमहिम्नःस्तोत्र के साथ-ही-साथ परम भक्तपर गन्धर्वराज पुष्पदन्तका भी नाम अमिट और अमर है। अपनी शिवाराधनासे उन्हें भगवान् शिवका सांनिध्य और शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त हुआ।

स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड, लिङ्ग-महात्म्यके ७७वें अध्यायमें पुष्पदन्तकी शिवभक्तिके विषयमें एक रोचक कथा आयी है, तदनुसार प्राचीन कालमें शिनि नामके एक धर्मात्मा अयोनिज ब्राह्मण थे। उनके कोई संतान नहीं हुई थी। उन्होंने अयोनिज पुत्रकी प्राप्तिके उद्देश्यसे दीर्घकालतक कठोर तपद्वारा भगवान् शंकरकी अराधना की। अपने महान् तपसे वे महान् तेजस्वी हो गये। उनके तपस्तेजसे सभी नदियोंका जल सूखने लगा, स्वर्गमें देवगण क्षुब्ध हो उठे। दिक्पाल एवं कुलपर्वत भी विचलित होने लगे। सम्पूर्ण पृथिवी हिलने-डुलने लगी। उस समय मेरु पर्वतपर अमासीन भगवती पार्वतीने महादेवजीसे कहा-'देव! महामुनि शिनि आपका भक्त है, उसने दुष्कर तपद्वारा महान् कष्ट सहा है। हे प्रभो! आपका भक्त दुःखोंकी विभीषिकाओंका समाना करे यह अच्छी बात नहीं है, अतः हे देव! आप कृपा करके अपने भक्तपर दया कीजिये। जगन्माता पार्वतीके ऐसा कहने पर भगवान्ने मुस्कुराते हुए कहा-'हे

देवि! ऐसा ही होगा।' इसके बाद उन्होंने अपने गणोंका स्मरण किया। क्षणभरमें ही सहस्रों महान् रुद्रगण उपस्थित होकर हाथ जोड़कर कहने लगे– 'स्वामिन्! हमें आज्ञा दीजिये।' इसमें गुणाधिप पुष्पदन्त भी थे। तब भगवान् शंकर बोले– 'गणो! शिनि नामक एक ब्राह्मण मेरा भक्त है, वह अयोनिज एवं अजर-अमर पुत्रकी इच्छासे महान् तप कर रहा है, तुममेंसे कौन ऐसा है जो भूलोकमें उसका पुत्रत्व स्वीकार करेगा। मुझे तो भक्तकी इच्छा पूर्ण करनी है, क्योंकि मेरे भक्तका संकल्प किसी भी प्रकारसे मिथ्या नहीं हो सकता'। भगवान् शंकरका सांनिध्य छोड़कर भूलोकके सभी भोगोंका तुच्छ आनन्द प्राप्त करना किसी भी गणको अभीष्ट नहीं था, अतः सभी मुख नीचे कर मौन ही स्थित रहे। किंतु पुष्पदन्त गणाग्रणी थे, शिवके परम प्रिय थे, शिवकी मायासे मोहित हो वे बोल पड़े–'हे देव! इस उत्तम गति को प्राप्तकर अब हम भूलोक जानेको तैयार नहीं हैं।' पुष्पदन्तसे आज्ञापराध हो पड़ा था, अब तो कोपभाजन बनाना ही था। भगवान्ने उन्हें अप्रिय वचन कहनेके कारण मनुष्यलोकमें जन्म देनेका शाप दे डाला और वीरकको विप्रवर शिनिके पुत्रत्व प्राप्त करनेके लिये कहा। भगवान्की आज्ञासे वीरकने ब्राह्मणपुत्रके रूपमें उनका अनुग्रह प्राप्त किया ।

इधर शापसे दुःखी हो भूलोकमें आकर पुष्पदन्त करुण विलाप करने लगे, प्रभुकी आज्ञा न माननेके लिये वे बार-बार पश्चाताप करने लगे–अहो! मैं बड़ा पापी हूँ, बड़ा अभागा हूँ, मैंने अपने स्वामीकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया, अब मेरी क्या गति होगी, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। दुःखित पुष्पदन्तने पुनः भगवान् महादेवकी ही शरण ग्रहण की; क्योंकि अन्य कोई उपाय भी नहीं था। बड़े ही दीन स्वरोंमें बार-बार प्रणिपात करते हुए वे प्रार्थना करने लगे–

दीनोऽस्मि ज्ञानहीनोऽस्मि प्रणतोऽस्मि च शंकर ।
कुरु प्रसादं देवेश अपराधं क्षमस्व मे ॥
न हि निर्वहणं यान्ति प्रभूणामाश्रिता रुषः ।
प्रसीद देवदेवेश दीनस्य कृपणस्य च ॥
अपि कीटपतंगत्वं गच्छेयं तव शासनात् ।
भक्तोऽहं सर्वदा देव पुत्रत्वे हि प्रतिष्ठितः ॥

(स्कन्दपुराण, अवन्ती०, लिं० मा० 88।44–46)

पुष्पदन्तकी भक्तिनिष्ठा एवं स्तुतिसे माता पार्वती एवं भगवान् शिव प्रसन्न हुए, उन्होंने उसे दर्शन देकर महाकालवनमें जाकर आराधना करनेको कहा। फिर क्या था, पुष्पदन्त महाकालवनमें गये, वहाँ उन्होंने लिङ्गरूपमें भगवान्‌की आराधना की। उनकी उपासनासे भगवान् प्रसन्न हुए। वे भगवती पार्वती तथा देवगणोंके साथ महाकालवनमें गये। पुष्पदन्त नित्य पुष्पों से महादेवजीका अर्चन करते थे। उसकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने वात्सल्यके वशीभूत हो स्नेहवश पुष्पदन्तको उठाकर अपनी गोदमें बिठा लिया और पुनः अपने गणोंका अधिपति बना लिया। पुष्पदन्तद्वारा प्रतिष्ठत वह लिङ्ग 'पुष्पदन्तेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। अवन्तीखण्डमें इस लिङ्गकी बड़ी महिमा गायी गयी है।

शिवमहिम्नःस्तोत्रम्

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपावादः परिकरः ॥१॥
अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं यकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।

(गन्धर्वराज पुष्पदन्त भगवान् शङ्करकी स्तुतिके उपक्रममें कहते हैं–) 'हे पाप हरण करनेवाले शङ्करजी! आपकी महिमाके आर-पारके ज्ञानसे रहित सामान्य (अल्प ज्ञानवान्) व्यक्तिके द्वारा की गयी आपकी स्तुति यदि आपके स्वरूप (माहात्म्य)-वर्णनके अनुरूप नहीं है तो (फिर) ब्रह्मादि देवोंकी वाणी भी आपकी स्तुति के अनुरूप नहीं है (क्योंकि वे भी अपके गुणोंका सर्वथा वर्णन नहीं कर सकते)। किंतु जब सभी लोग अपनी-अपनी बुद्धि (-की शक्ति)-के अनुसार स्तुति करते हुए उपालम्भके योग्य नहीं माने जाते हैं, तब मेरा भी स्तुति करने का (यह) प्रयास अपवादरहित ही होना चाहिये' (यह प्रयास खण्डनीय नहीं है) ॥१॥

'आपकी महिमा वाणी और मनकी पहुँच से परे है। आपकी उस महिमाका वेद भी (अश्चर्य-) चकित (भयभीत) होकर (निषधमुखेन) नेति-नेति कहते हुए आशयरूप में वर्णन करते हैं।

स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥
मधुस्फीता वाचः परममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

फिर तो ऐसे अचिन्त्य महिमामय आप किसकी स्तुतिके विषय (वर्ण्य) हो सकते हैं? अर्थात् किसीकी स्तुति तदर्थ समर्थ नहीं हो सकती; क्योंकि आपके गुण न जाने कितने प्रकारके हैं अर्थात् अनन्त हैं। फिर भी हे प्रभो! नवीन परम रमणीय आपके (सगुण-) रूपके विषयमें वर्णनके लिये किसका मन आसक्त नहीं होता और किसकी वाणी उसमें प्रवृत्त नहीं होती? अर्थात्-सबके मन-वचन सगुणरूपमें संलग्न हो जाते हैं-सभी अपनी वाणी को प्रेरित करके वर्णनमें लगा देते हैं'॥२॥

'हे भगवान्! मधुसे सिक्त-सी अत्यन्त मधुर एवं परम उत्तम अमृतरूप वेदवाणीकी रचना करनेवाले देवाधिदेव ब्रह्मदेवकी वाणी भी क्या आपके गुणोंको प्रकाशित कर आपको चमत्कृत कर सकती है? (कदापि नहीं) फिर भी हे त्रिपुरारि! मेरी बुद्धि आपके गुणानुवादजनित पुण्यसे अपनी इस (मलिन वासना से भरी अतएव अपवित्र) वाणी को पवित्र करने के लिये (ही) आपके गुण-कथन के द्वारा (की जानेवाली)

स्तुतिके विषयमें उद्यत है' (न कि अपने स्तुति–कौशलसे आपका अनुरञ्जन करूँगा– यह मेरा अभिप्राय है)।।३।।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ।।४।।
किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ।।५।।

'हे वर देनेवाले शिवजी! आप विश्वका सृजन, पालन एवं संहार करते हैं–ऐसा ऋग्वेद, युजर्वेद, सामवेद (वेदत्रयी) निष्कर्षरूपसे वर्णन करते हैं। इसी प्रकार तीनों गुणोंसे विभिन्न त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा–विष्णु–महेश)–में बँटा हुआ जो इस ब्रह्माण्ड में आपका वह प्रख्यात (रचनात्मक, पालनात्मक एवं संहारात्मक) ऐश्वर्य है, उसके विषय में खण्डन करने के लिये कुछ जड़बुद्धि अकल्याणभागी (मन्दों) अभागों (नास्तिकों)–को मनोहर लगनेवाला पर वास्तव में अशोभनीय या हानिकारक व्यर्थ का मिथ्याप्रलाप (बकवाद) उठाते हैं'।।४।।

'हे वरद भगवन्! वह विधाता त्रिभुवनका निर्माण करता है तो उसकी कैसी चेष्टा होती है? उसका स्वरूप क्या है? फिर उसके साधन क्या हैं?' आधार अर्थात् जगत्का उपादान कारण क्या है?–इस प्रकारका कुतर्क, सब तर्कोंसे परे अचिन्त्य ऐश्वर्यवाले आपके विषयमें निराधार एवं

नगण्य (उपेक्षित) होता हुआ भी सांसारिक (साधारण) जनोंको भ्रममें डालनेके लिये कुछ मूर्खों को वाचाल बना देता है' ॥५॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

'हे देव! श्रेष्ठ अवयववाले (शरीरधारी) होते हुए भी ये लोक क्या बिना जन्मके ही हैं? (नहीं, कदापि नहीं;) क्या विश्वकी सृष्टि-पालन-संहार आदि क्रियाएँ बिना (अधिष्ठान) कर्ताके माने सम्भव हो सकती हैं? या ईश्वरके बिना कोई सामान्य जीव ही अधिष्ठान या कर्ता हो सकता है? (नहीं, क्योंकि) यदि असमर्थ जीव ही कर्ता है तो चौदह भुवनोंकी सृष्टिके लिये उसके पास क्या साधन हो सकता है? (इस प्रकार आपके अस्तित्व के प्रमाण सिद्ध होनेपर भी) यतः वे (जडबुद्धि) शङ्का करते हैं, अतः वे बड़े अभागी हैं' ॥६॥

'ऋक्, यजुः, साम-ये वेद, सांख्यशास्त्र, योगशास्त्र, पाशुपतमत, वैष्णवमत आदि विभिन्न मत-मतान्तर हैं। इनमें (सभी लोग हमारा) यह मत उत्तम है, हमारा मत लाभप्रद है (दूसरों का नहीं;)-इस प्रकारकी रुचियोंकी विचित्रतासे सीधे-टेढ़े नाना मार्गोंसे चलनेवाले साधकोंके लिये एकमात्र प्राप्तव्य (गन्तव्य) आप ही हैं। जैसे सीधे-टेढ़े मार्गोंसे बहती हुई सभी नदियाँ अन्तमें समुद्रमें ही पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी मतानुयायी आपके ही पास पहुँचते हैं' ॥७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः

कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।

सुरास्तां तामृद्धिं दधति च भवद्भ्रूप्रणिहितां

न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं

परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।

समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव

स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्ट मुखरता ॥९॥

'हे वरदानी शङ्कर! बूढ़ा बैल, खटियेका पावा, फरसा, चर्म, भस्म, सर्प, कपाल—बस इतनी ही आपके कुटुम्ब-पालनकी सामग्री है। फिर भी इन्द्रादि देवताओं ने आपके कृपाकटाक्षसे ही उन अपनी विलक्षण (अतुलनीय) समृद्धियों (भागों)-को प्राप्त किया है; किंतु आपके पास भोग की कोई वस्तु नहीं है; क्योंकि विषयवासनारूपी मृगतृष्णा स्वरूपभूत चैतन्य आत्माराममें रमण करनेवालेको भ्रमित नहीं कर पाती है' ॥८॥

'हे त्रिपुरारि! कोई वादी इस सम्पूर्ण जगत् को ध्रुव (नित्य) कहता है, कोई इस सबको अध्रुव (असत् या अनित्य) बताता है और कोई तो विश्व के समस्त पदार्थों में कुछ नित्य और कुछ अनित्य है—ऐसा कहता है। उन सब वादोंसे आश्चर्यचकित-सा मैं उन्हीं वादों (स्तुति-प्रकारों)-से आपकी स्तुति करता हुआ लज्जित नहीं हो रहा हूँ; क्योंकि मुखरता (वाचालता) धृष्ट होती ही है' (उसे लज्जा कहाँ) ॥९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चो हरिरधः

परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्

स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवाशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

'हे गिरिश! (अग्नि-स्तम्भके समान) आपका जो लिङ्गाकार तैजस रूप (ऐश्वर्य) प्रकट हुआ उसके ओर-छोरको जाननेके लिये ऊपरकी ओर ब्रह्मा तथा नीचेकी ओर विष्णु बड़े प्रयत्नसे गये; पर, (वे दोनों ही) पार पानेमें असमर्थ रहे। तब उन दोनोंने श्रद्धा और भक्तिसे पूर्ण बुद्धिसे नतमस्तक हो आपकी स्तुति की। (तब उनकी स्तुति से प्रसन्न हो) आप उन दोनोंके समक्ष स्वयं प्रकट हो गये। हे भगवन्! श्रद्धाभक्तिपूर्वक की गयी आपकी सेवा (स्तुति) क्या फलीभूत नहीं होती?' (अर्थात् अवश्य फलीभूत होती है)॥१०॥

'हे त्रिपुरारि! दशमुख रावण ने तीनों भुवनों का निष्कण्टक राज्य बिना प्रयत्न (अनायास) प्राप्तकर जो अपनी भुजाओंकी युद्ध करनेकी खुजलाहट न मिटा सका (प्रतिभटसे युद्ध करनेकी इच्छा पूर्ण न कर सका; क्योंकि कोई प्रतिभट मिला ही नहीं), यह आपके चरणकमलोंमें अपने दस सिररूपी कमलोंकी बलि प्रदान करनेमें प्रवृत्त आपमें अविचल भक्तिका ही प्रभाव है' ॥११॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः॥१२॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-

मधचश्रक्रे बाणः परिजनविधेययस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वरूयवनतिः ॥१३॥

'हे त्रिपुरारि! आपकी सेवासे रावणकी भुजाओं में शक्ति प्राप्त हुई थी। अभिमानमें आकर वह अपना भुजाबल आपके निवास-स्थान कैलासके उठानेमें भी तौलने लगा, पर आपने जो पैरके अँूगठेकी नोकसे जरा-सा कैलास को दबा दिया तो उस रावणकी प्रतिष्ठा (स्थिति) पाताल में भी दुर्लभ हो गयी। (वह नीचे-ही-नीचे खिसकता चला गया।) प्रायः यह निश्चित है कि नीच व्यक्ति समृद्धिको पाकर मोहमें फँस जाता है' (कृतघ्न हो जाता है) ॥१२॥

'हे वरदानी शङ्कर! त्रिभुवनको वशवर्ती बनानेवाले बाणासुरने इन्द्रकी आपार (परमोच्च) सम्पत्तिको भी जो अपने समक्ष नीचा कर दिया, वह आपके चरणोंके शरणागत (सेवक) उस बाणासुरके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आपके समक्ष सिर झुकाना (नतमस्तक होना) किसकी (किस-किस विषयकी) उन्नति के लिए नहीं होता? अर्थात् आपके चरणोंमें सिर झुकानेसे सबकी सब प्रकारकी उन्नति होगी'॥१३॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥
असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

'हे त्रिनेत्र शङ्कर! समुद्रमन्थनसे उत्पन्न विषकी विषम ज्वालासे असमयमें ही ब्रह्माण्डके नाशके भयसे चकित देवों और दानवों पर दयार्द्र होकर विषपान करनेवाले आपके कण्ठमें जो कालापन (नीला धब्बा) है, वह क्या आपकी शोभा नहीं बढ़ा रहा है। (अर्थात् महोपकारके कार्य से उत्पन्न होने के कारण और अधिक शोभा बढ़ा रहा है।) वस्तुतः संसारके भय को दूर करने के स्वभाववाले महापुरुषोंका विकार भी प्रशंसनीय होता है' ॥१४॥

'हे ज़गदीश! जिस कामदेवके बाण देव, असुर एवं नरसमूहरूप विश्व में नित्य विजेता रहे, कहीं भी असफल होकर नहीं लौटते थे, वही कामदेव जब आपको अन्य देवताओंके समान (जेय) समझने लगा, तब आपके देखते ही वह स्मृतिमात्र शेष रह गया (भस्म हो गया) और (सच है कि) जितेन्द्रियोंका अपमान (उन्हें विचलित करनेका उपक्रम) कल्याणकारी नहीं (अपितु घातक) होता है'॥१५॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौःस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥
वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

'हे ईश! जब आप ताण्डव (नर्तन) करते हैं तब आपके पैरोंके आघात (चोट)-से पृथ्वी अचानक संशय (संकट)-को प्राप्त हो जाती है; आकाशमण्डलके ग्रह-नक्षत्र-तारे आपके घूमते हुए भुजदण्ड (की चोट)-से पीडित हो जाते हैं (अतः आकाशमण्डल भी संकटग्रस्त हो

जाता है)। स्वर्ग आपकी खुली (बिखरी) हुई जटाओंके किनारोंकी चोटसे बारम्बार दुःखद स्थितिको प्राप्त हो जाता है। यद्यपि आप जगत्‌की रक्षाके लिये ही ताण्डव करते हैं; फिर भी आपकी प्रभुता (तो) वाम (क्षोभद) हो ही जाती है' (सच है सम्पत्तिवालेका उचित कार्य भी विक्षोभ उत्पन्न कर देता है) ॥१६॥

'हे जगदीश! समस्त आकाशमें फैले तारोंके सदृश फेनकी शोभावाला जो गङ्गाजलका प्रवाह है, वह आपके सिरपर जलबिन्दुके समान (छोटा) दिखायी पड़ा और (सिर से नीचे गिरने पर) उसी जलबिन्दु ने समुद्ररूपी करधनी (वलय)-के भीतर संसारको द्वीपके समान बना दिया। बस, इसीसे आपका दिव्य शरीर सर्वोत्कृष्ट है—यह अनुमेय हो जाता है' ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधाक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥
हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

'हे परमेश्वर! त्रिपुरासुररूपी तृणको दग्ध करनेके इच्छुक आपने पृथ्वीको रथ, ब्रह्माको सारथि, सुमेरुपर्वतको धनुष, चन्द्र और सूर्यको रथ के दोनों चक्के और चक्रपाणि विष्णुको (जो) बाण बनाया, (तो) यह सब आडम्बर (समारम्भ) करनेका क्या प्रयोजन था? (सर्वसमर्थ आप उसे अपने इच्छामात्रसे जला सकते थे) निश्चय ही अपने वशवर्ती (हाथमें

स्थित) खिलौनों से खेलती हुई ईश्वर की बुद्धि पराधीन नहीं होती' (अर्थात् वह स्वतन्त्ररूपसे अपने खिलौनोंसे खेलती रहती है)॥१८॥

'हे त्रिपुरारि! भगवान् विष्णुने आपके चरणोंमें एक हजार कमल चढ़ानेका संकल्प किया था। उनमें जो एक कमल कम पड़ गया तो उन्होंने अपना ही नेत्रकमल उखाड़ कर चढ़ा दिया। बस, उनकी यही भक्तिकी पराकाष्ठा सुदर्शन चक्रका स्वरूप धारण कर त्रिभुवनकी रक्षाके लिये सदा जागरूक है' (भगवान् शङ्करने प्रसन्न होकर श्रीविष्णुको चक्र प्रदान कर दिया था, जो विश्वका संरक्षण अनुग्रह-निग्रहद्वारा करता है) ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥
क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

'हे त्रिपुरारि! (बिना फल दिये ही) यज्ञादिके समाप्त हो जानेपर यज्ञकर्ताओंका यज्ञफलसे सम्बन्ध करनेके लिये (फल दिलानेके लिये) आप तत्पर रहते हैं। कर्म तो करनेके बाद नष्ट हो जाता है (वह जड है)। अतः चेतन परमेश्वरकी आराधनाके बिना वह नष्ट कर्म फल देनेमें समर्थ नहीं होता है। इसलिये आपको यज्ञोंके फल देनेमें समर्थ दाता देखकर पुण्यात्मालोग वेदवाक्योंमें श्रद्धा-विश्वास रखकर (यज्ञ-) कर्म में तत्पर रहते हैं' ॥२०॥

'हे शरणदाता शङ्कर! कार्यमें कुशल प्रजाजनोंका स्वामी प्रजापति दक्ष यज्ञका यजमान (क्रतुपति) बना था। त्रिकालदर्शी ऋषिगण याज्ञिक (यज्ञ करानेवाले होता आदि) थे। देवगण यज्ञ के सामान्य सदस्य थे। फिर भी यज्ञफलके वितरण के व्यसनी आपसे ही यज्ञका विध्वंस हो गया। अतः यह निश्चित है कि अश्रद्धासे किये गये यज्ञ (कर्म) कर्ताके विनाशके लिये ही सिद्ध होते हैं' (दक्ष ने श्रद्धावर्जित यज्ञ किया था) ।।२१।।

प्रजानाथं प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पोणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।।२२।।

'हे स्वामिन्! (एक बार) कामुक ब्रह्माने अपनी दुहितासे हठपूर्वक रमण करनेकी इच्छा की। वह लज्जासे मृगी बनकर भागी; तब ब्रह्मा भी मृग बनकर उसके पीछ दौड़े। आपने भी उन्हें दण्ड देनेके लिये मृगके शिकारीके वेगके समान हाथमें धानुष लेकर बाण चला दिया। स्वर्गमें जानेपर भी ब्रह्मा आपके वाणसे भयभीत हो रहे हैं। उन्हें बाणने आज भी नहीं छोड़ा है; अर्थात् ब्रह्मा 'मृगशिरा' नक्षत्र बनकर भागे तो बाण 'आर्द्रा' नक्षत्र बनकर आज भी पीछा करता है' (ये दोनों आकाशमण्डलामें आगे-पीछे देखे जा सकते हैं)।।२२।।

[यह पौराणिक कथा है किएक बार ब्रह्मा अपनी दुहिता सन्ध्याको अत्यन्त रूप-लावण्यवती देखकर मोहित हो गये। उन्होंने उपगमन करना चाहा। सन्ध्या लज्जाके मारे मृगी बनकर भाग चली। ब्रह्माने मृगरूप बना लिया और पीछा किया। इस अनर्थको देखकर भगवान् भूतभावनने प्रजानाथको दण्डित करनेके लिये पिनाक चढ़ाकर बाण छोड़ दिया। उससे पीडित तथा लज्जित होकर ब्रह्मा मृगशिरा नक्षत्र हो गये। फिर

रुद्रका बाण भी आर्द्रा नक्षत्र होकर उनके पीछे-भागमें लग गया। वह आज भी उनके पीछे लगा हुआ दीखता है।]

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥
श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

'हे त्रिपुरारि! हे यमनियमपरायण! हे वरद शङ्कर! अपने सौन्दर्यसे शिवपर विजय प्राप्त कर लूँगा'—इस सम्भावनासे हाथमें धनुष उठाये हुए कामदेवको सामने ही तुरंत आपके द्वारा तिनकेकी भाँति भस्म होता हुआ देखकर भी यदि देवी (पार्वतीजी) अर्धनारीश्वर (आधे शरीरमें पार्वतीको स्थान देने)—के कारण आपको स्त्रीभक्त जानती हैं तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि स्त्रियाँ (स्वभावतः) अज्ञानी होती हैं' ॥२३॥

'हे कामरिपु! हे वरद शङ्करजी! आप श्मशानोंमें क्रीडा करते हैं, प्रेत-पिशाचगण आपके साथी हैं, चिताकी भस्म आपका अङ्गराग है, आपकी माला भी मनुष्यकी खोपडियोंकी है। इस प्रकार यह सब आपका अमङ्गल स्वभाव (स्वाँग) देखनमें भले ही अशुभ हो, फिर भी स्मरण करनेवाले भक्तोंके लिये तो आप परम मङ्गलमय ही हैं' ॥२४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।

यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधात्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान् ॥२५॥
त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

'हे प्रभो! (शाम-दम आदि साधनोंसे सम्पन्न) हृदयकमलमें मनको बहिर्मुखी (संकल्प-विकल्पात्मक) सभी वृत्तियोंसे शून्य करके अपने भीतर जिस किसी विलक्षण (आनन्दरूप परब्रह्म चिन्मात्र) तत्त्वका' दर्शन कर रोमाञ्चित हो जाते हैं और उनकी आँखें आनन्दके आँसुओं से भर जाती हैं। उस समय मानो वे अमृतके समुद्रमें अवगाहन कर दिव्य आनन्दका अनुभव करते हैं; वह निर्गुण आनन्दस्वरूप ब्रह्म निश्चयरूपसे आप ही हैं' ॥२५॥

'हे भगवन्! परिपक्व बुद्धिवाले प्रौढ़ विद्वान्—आप सूर्य हैं, आप चन्द्र हैं, आप पवन हैं, आप अग्नि हैं, आज जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, आप आत्मा हैं—इस प्रकारकी सीमित अर्थयुक्त वाणी आपके विषयमें कहते रहे हैं; पर हम तो विश्वमें ऐसा कोई तत्त्व (वस्तु) नहीं देखते (जानते) जो स्वयं साक्षात् आप न हों' ॥२६॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत् तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिवरुन्धानमाणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वं शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥
भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रविहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

'हे शरण देनेवाले! ओम्—यह शब्द अपने व्यस्त (पृथक्-पृथक् अक्षरवाले) अकार, उकार, मकाररूपसे तीनों वेद (ऋक्, यजुः, साम), तीनों अवस्था (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति), तीनों लोक (स्वर्ग-भूमि-पाताल), तीनों देवता (ब्रह्मा-विष्णु-महेश), तीनों शरीर (स्थूल-सूक्ष्म-कारण), तीनों रूप (विश्व-तैजस-प्राज्ञ) आदिके रूप में आपका ही प्रतिपादन करता है तथा अपने अवयवोंके समष्टि (संयुक्त-समस्त)-रूप (ओम्)-से निर्विकार निष्कल तीन अवस्था एवं त्रिपुटियोंसे रहित आपके तुरीय स्वरूपकी सूक्ष्म ध्वनियोंसे ग्रहण कर प्रतिपादन करता है' (ॐ आपके स्वरूपका सर्वतः निर्वचन करता है)।।२७।।

'हे महादेव! आपके जो आठ अभिधान (नाम)-भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महादेव, भीम और ईशान हैं, उनमें प्रत्येकमें वेदमन्त्र भी पर्याप्त मात्रामें विचरण करते हैं और वेदानुगामी पुराण भी इन नामोंमें विचरते हैं; अर्थात् वेद-पुराण सभी उन आठों नामों का अतिशय प्रतिपादन करते हैं। अतः परम प्रिय एवं प्रत्यक्ष समस्त जगत्के आश्रय आपको मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ'।।२८।।

'हे अति निकटवर्ती और एकान्त (निर्जन) वन-विहारके प्रेमी! आपको प्रणाम है; अति दूरवर्ती आपको प्रणाम है। हे कामारि! अति लघु (सुक्ष्मरूपधारी) आपको प्रणाम है। हे अति महान्! आपको प्रणाम है।'

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनय यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ।।२९।।
बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतम से तत्संहारे हराय नमो नमः ।

जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

'हे त्रिनेत्र! वृद्धतम आपको नमस्कार है; अत्यन्त युवक! आपको प्रणाम है। सर्वस्वरूप! आपको नमस्कार है; परोक्ष, प्रत्यक्ष पदसे परे अनिर्वचनीय सबके अधिष्ठानस्वरूप! आपको नमस्कार है' ॥२९॥

'विश्व की सृष्टिके लिये रजोगुणकी अधिकता धारण करनेवाले ब्रह्मारूपधारी! आपको बारम्बार नमस्कार है। विश्वके संहारके लिये तमोगुणकी अधिकता धारण करनेवाले हर (रुद्र)-रूपधारी! आपको बारम्बार नमस्कार है। समस्त जीवोंके सुख (पालन)-के लिये सत्त्वगुणकी अधिकता धारण करनेवाले विष्णुरूपधारी (आप) मृडको बारम्बार नमस्कार है। स्वयं प्रकाश मोक्ष के लिये त्रिगुणातीत, समस्त द्वैतसे रहित मङ्गलमय अद्वैत (आप) शिवको बारम्बार नमस्कार है' ॥३०॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

'हे वरद शिव! (अविद्या आदि) कष्टोंके वशीभूत (अल्प शक्तियुक्त) कहाँ तो यह मेरा चित्त और कहाँ सम्पूर्ण गुणोंकी सीमाके बाहर पहुँची सदा (त्रिकाल) स्थायिनी आपकी ऋद्धि (विभूति)। (दोनों में बहुत असमानता है।) इसी भयसे ग्रस्त आपके चरणोंकी भक्तिने मुझे उत्साहित कर आपके चरणोंमें मुझसे वाक्यरूपी पुष्पोपहार, वाक्यकुसुमाञ्जलि, वाक्यचयकी स्तुतिरूपी अञ्जलि समर्पित करायी है' ॥३१॥

'हे ईश! यदि काले पर्वतके समान स्याही हो, समुद्रकी दवात हो, कल्पवृक्षकी शाखाओं की कलम बने, पृथ्वी कागज बने और इन साधनोंसे यदि सरस्वती (स्वयं) सर्वदा (जीवनपर्यन्त) आपके गुणोंको लिखें तब भी वे आपके गुणों का पार नहीं पा सकेंगी' ॥३२॥

'इस प्रकार शिव के सभी गणोंमें श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने दैत्येन्द्रों, सुरेन्द्रों एवं मुनीन्द्रों से पूजित, समस्त गुणों से परिपूर्ण होते हुए भी निर्गुण जगदीश्वर चन्द्रशेखर भगवान् शिवजीके इस सुन्दर स्तोत्रको बड़े छन्दोंमें (स्तुति-हेतु) बनाया' ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥
महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरा मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥
दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नः स्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥

'जो व्यक्ति पवित्र अन्तःकरण (हृदय)-से परम भक्ति के साथ भगवान् शङ्करके इस प्रशंसनीय स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, वह इस लोकमें पर्याप्त धन एवं आयुको पता है, पुत्रवान् और यशस्वी होता है

तथा (मृत्युके बाद) शिवलोकको प्राप्तकर शिवके समान (आनन्दमग्न) रहता है' ॥३४॥

'महेशसे बढ़कर (उत्तम) कोई देवता नहीं है, (इस) शिवमहिम्नः-स्तोत्रसे बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। अघोरमन्त्रसे बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है, गुरुसे बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है' ॥३५॥

'मन्त्र आदिकी दीक्षा, दान, तप, तीर्थाटन, ज्ञान तथा यज्ञादि—ये सब शिवमहिम्नःस्तोत्रकी सोलहवीं कला (अंश)-को भी नहीं पा सकते' ॥३६॥

स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।

स्तनवनमिदमकार्षीद् दिव्यदिव्यं महिम्नः॥३७॥
सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८॥
आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३९॥
इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः॥४०॥

'बालचन्द्र को सिर पर धारण करनेवाले देवाधिदेव महादेवका पुष्पदन्तनामक एक दास, जो सभी गन्धर्वों का राजा था, इन शिवजी के कोप से अपने ऐश्वर्यसे च्युत हो गया था। (उसके बाद) उसने इस परम दिव्य शिवमहिम्नःस्तोत्रकी रचना की' (जिससे पुनः उसने उनकी कृपा प्राप्त की) ॥३७॥

'यदि मनुष्य हाथ जोड़कर एकाग्रचित्तसे देवताओं, मुनियोंके पूज्य, स्वर्ग एवं मोक्षको देनेवाले, पुष्पदन्तरचित इस अमोघ (अवश्य फल

देनेवाले) स्तोत्रका पाठ करता है, तो वह किन्नरोंसे स्तुति (प्रशंसा) प्राप्त करता हुआ भगवान् शिवके समीप (शिवलोक में) पहुँच जाता है' ।।३८।।

'पुष्पदन्तरचित यह सम्पूर्ण स्तोत्र (आदिसे अन्ततक) पवित्र है, अनुपम है, मनोहर है, शिव (मङ्गलमय) है। इसमें ईश्वर (शिव)-का वर्णन है' ।।३९।।

'उस पुष्पदन्त ने यह शिवमयी पूजा श्रीमान् शङ्कर के चरणोंमें समर्पित की है। उसी प्रकार मैंने भी (पाठरूपी पूजा) समर्पित की है। अतः इससे सदाशिव मुझपर (भी) प्रसन्न हों' ।।४०।।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ।।४१।।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।।४२।।
श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ।।४३।।

।। इति शिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

'हे महेश्वर! मैं आपका तत्त्व (वास्तविक रूप) नहीं जानता, आप कैसे हैं—इसका ज्ञान मुझे नहीं है। आप चाहे जैसे हों, वैसे ही आपको बार-बार प्रणाम है' ।।४१।।

'जो मनुष्य शिवमहिम्नःस्तोत्र का पाठ एक समय, दोनों समय या तीनों समय करेगा, वह समस्त पापों से छुटकारा पाकर शिवलोकमें पूजित होगा' ।।४२।।

'पुष्पदन्तके मुखकमलसे निकले हुए पापहारी शिवजीके प्रिय इस स्तोत्रको कण्ठस्थ (याद)-कर एकाग्रचित (मनोयोग)-से पाठ करनेसे समस्त प्राणियोंके स्वामी महेश बहुत प्रसन्न होते हैं' ॥४३॥

॥ इस प्रकार शिवमहिम्नःस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

उपमन्युकृत शिव-स्तुति

पशुपतिवचनाद् भवामि सद्यः कृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः।
अपशुपतिवरप्रसादजा मे त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥

'मैं भगवान् पशुपतिके कहनेसे तत्काल प्रसन्नतापूर्वक कीट अथवा अनेक शाखाओंसे युक्त वृक्ष भी हो सकता हूँ, परंतु भगवान् शिवसे भिन्न दूसरे किसीके वर-प्रसादसे मुझे त्रिभुवन का राज्यवैभव प्राप्त हो रहा हो तो वह भी अभीष्ट नहीं है।'

जन्म श्वपाकमध्येऽपि मेऽस्तु हरचरणवन्दनरतस्य ।
मा वानीश्वरभक्तो भवानि भवनेऽपि शक्रस्य ॥

'यदि मुझे भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंकी वन्दनामें तत्पर रहनेका अवसर मिले तो मेरा जन्म चाण्डालोंमें भी हो जाय तो वह मुझे सहर्ष स्वीकार है। परंतु भगवान् शिवकी अनन्यभक्तिसे रहित होकर मैं इन्द्रके भवन में भी स्थान पाना नहीं चाहता।'

वाय्वम्बुभुजोऽपि सतो नरस्य दुःखक्षयः कुतस्तस्य ।
भवति हि सुरासुरगुरौ यस्य न विश्वेश्वरे भक्तिः ॥

'कोई जल या हवा पीकर ही रहने वाला क्यों न हो, जिसकी सुरासुरगुरु भगवान् विश्वनाथ में भक्ति न हो उसके दुःखों का नाश कैसे हो सकता है?'

अलमन्याभिस्तेषां कथाभिरप्यन्यधर्मयुक्ताभिः ।
येषां न क्षणमपि रुचितो हरचरणस्मरणविच्छेदः ॥

'जिन्हें क्षणभरके लिये भी भगवान् शिवके चरणारविन्दोंके स्मरणका वियोग अच्छा नहीं लगता, उन पुरुषोंके लिये अन्यान्य धर्मोंसे युक्त दूसरी-दूसरी सारी कथाएँ व्यर्थ हैं।'

हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य ।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा ॥

'कुटिल कलिकालको पाकर सभी पुरुषोंको अपना मन भगवान् शंकरके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें लगा देना चाहिये। शिव-भक्तिरूपी रसायनके पी लेने पर संसाररूपी रोगका भय नहीं रह जाता है।'

दिवसं दिवसार्धं वा मुहूर्तं वा क्षणं लवम् ।
न ह्यलब्धप्रसादस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥

'जिसपर भगवान शिवकी कृपा नहीं है, उस मनुष्यकी एक दिन, आधे दिन, एक मुहूर्त, एक क्षण या एक लवके लिये भी भगवान् शंकर में भक्ति नहीं होती।'

अपि कीटः पतङ्गो वा भवेयं शंकराज्ञया ।
न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये ॥
श्वापि महेश्वरवचनाद् भवामि स हि नः परः कामः ।
त्रिदशगणराज्यमपि खलु नेच्छाम्यमहेश्वराज्ञप्तम् ॥

'शक्र! मैं भगवान् शंकरकी आज्ञासे कीट या पतंग भी हो सकता हूँ, परंतु तुम्हारा दिया हुआ त्रिलोकीका राज्य भी नहीं लेना चाहता।

महेश्वरके कहनेसे यदि मैं कुत्ता भी हो जाऊँ तो उसे मैं सर्वोत्तम मनोरथकी पूर्ति समझूँगा, परंतु महादेवजीके सिवा दूसरे किसीसे प्राप्त हुए देवताओंके राज्यको लेने की भी मुझे इच्छा नहीं है।'

न नाकपृष्ठं न च देवराज्यं न ब्रह्मलोकं न च निष्कलत्वम् ।
न सर्वकामानखिलान् वृणोमि हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ॥

'न तो मैं स्वर्गलोक चाहता हूँ, न देवताओंका राज्य पाने की अभिलाषा रखता हूँ। न ब्रह्मलोककी इच्छा करता हूँ और न निर्गुण ब्रह्मका सायुजय ही प्राप्त करना चाहता हूँ। भूमण्डलकी समस्त कामनाओंको भी पानेकी मेरी इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भगवान् शिवकी दासताका ही वरण करता हूँ।'

यावच्छशाङ्कधवलामलबद्धमौलि-
र्न प्रीयते पशुपतिर्भगवान् ममेशः ।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातै-
र्दुःखानि देहविहितानि समुद्वहामि ॥

'जिनके मस्तकपर अर्धचन्द्रमय उज्ज्वल एवं निर्मल मुकुट बँधा हुआ है, वे मेरे स्वामी भगवान् पशुपति जबतक प्रसन्न नहीं होते हैं, तबतक मैं जरा-मृत्यु और जन्मके सैकड़ों आघातोंसे प्राप्त होनेवाले दैहिक दुःखोंका भार ढोता रहूँगा।'

दिवसकरशशाङ्कवह्निदीप्तं
त्रिभुवनसारमसारमाद्यमेकम् ।
अजरममरमप्रसाद्य रुद्रं
जगति पुमानिह को लभते शान्तिम् ॥

'जो अपने नेत्रभूत सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी प्रभा से उद्भासित होते हैं, त्रिभुवनके साररूप हैं, जिनसे बढ़कर सार-तत्त्व दूसरा नहीं है, जो

जगत्के आदिकारण, अद्वितीय तथा अजर-अमर हैं, उन भगवान् रुद्रको भक्तिभावसे प्रसन्न किये बिना कौन पुरुष इस संसारमें शान्ति पा सकता है।'

यदि नाम जन्म भूयो भवति मदीयैः पुनर्दोषैः ।
तस्मिंस्तस्मिञ्जन्मनि भवे भवेन्मेऽक्षया भक्तिः ॥

'यदि मेरे दोषोंसे मुझे बारंबार इस जगत्में जन्म लेना पड़े तो मेरी यही इच्छा है कि उस-उस प्रत्येक जन्ममें भगवान् शिवमें मेरी अक्षय भक्ति हो।'

—(महाभारत, अनुशासनपर्व १४।१८०-१९१)

वन्दे शिवं शङ्करम्

श्रीशिवस्तुतिः

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१॥
वन्दे सर्वजगद्विहारमतुलं वन्देऽन्धकध्वंसिनं
वन्दे देवशिखामणिं शशिनिभं वन्दे हरेर्वल्लभम् ।
वन्दे नागभुजङ्गभूषणधरं वन्दे शिवं चिन्मयं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥२॥

पार्वतीपति भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ, देवताओंके गुरु तथा सृष्टिके कारणरूप परमेश्वर भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ, नागोंको आभूषणके रूपमें तथा हाथमें मृगमुद्रा धारण करनेवाले एवं समस्त जीवोंके गुरु—स्वामी भगवान् शङ्करको मैं नमस्कार करता हूँ। सूर्य, चन्द्र और अग्निदेवको नेत्ररूपमें धारण करनेवाले भगवान् नारायणके परम प्रिय भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। भक्त-जनोंको आश्रय

देनेवाले–वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ।।१।।

जिनके विहारकी पूरे विश्वमें कोई तुलना नहीं है, ऐसे अतुलनीय विहारी भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। अन्धकासुरके हन्ता भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सभी देवताओंके शिरोमणि हैं, जिनकी कान्ति चन्द्रमाके समान है, जिन्होंने अपने शरीरपर नागों और सर्पोंको आभूषणके रूपमें धारण कर रखा है और जो भगवान् विष्णुको अत्यन्त प्रिय अपने भक्त–जनोंका आश्रय देनेवाले हैं, ऐसे वरदानी परम कल्याणस्वरूप चिदानन्द भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ।।२।।

वन्दे दिव्यमचिन्त्यमद्वयमहं वन्देऽर्कदर्पापहं
वन्दे निर्मलमादिमूलमनिशं वन्दे मखध्वंसिनम् ।
वन्दे सत्यमनन्तमाद्यमभयं वन्देऽतिशान्ताकृतिं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।।३।।
वन्दे भूरथमम्बुजाक्षविशिखं वन्दे श्रुतित्रोटकं
वन्दे शैलशरासनं फणिगुणं वन्देऽधितूणीरकम् ।
वन्दे पद्मजसारथिं पुरहरं वन्दे महाभैरवं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।।४।।

अचिन्त्य शक्तिसे सम्पन्न, दिव्य लोकोत्तर, अद्वय ब्रह्मस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। सूर्यके अभिमानका दलन करनेवाले, निर्मल स्वरूप वाले, विश्वके मूल कारण भगवान् शङ्करकी मैं सतत वन्दना करता हूँ। जो दक्ष प्रजापतिके यज्ञको नष्ट करनेवाले तथा शान्त आकृतिवाले, सत्यस्वरूप, अनन्तस्वरूप, आद्यस्वरूप और सदा निर्भय रहनेवाले एवं भक्त–जनोंको आश्रय देनेवाले हैं, ऐसे वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ।।३।।

त्रिपुरासुरको दग्ध करनेके लिए पृथ्वीको रथ, ब्रह्माको सारथि, सुमेरु पर्वतको धनुष, श्रुतिको त्रोटक, शेषको प्रत्यञ्चा, आकाशको तूणीर और

कमलनयन भगवान् विष्णुको बाण बनानेवाले, महाभैरव रूपधारी, भक्त-जनोंको आश्रय देनेवाले तथा वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ।।४।।

वन्दे पञ्चमुखाम्बुजं त्रिनयनं वन्दे ललाटेक्षणं
वन्दे व्योमगतं जटासुमुकुटं चन्द्रार्धगङ्गाधरम् ।
वन्दे भस्मकृतत्रिपुण्ड्रजटिलं वन्देष्टमूर्त्यात्मकं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।।५।।
वन्दे कालहरं हरं विषधरं वन्दे मृडं धूर्जटिं
वन्दे सर्वगतं दयामृतनिधिं वन्दे नृसिंहापहम् ।
वन्दे विप्रसुरार्चिताङ्घ्रिकमलं वन्दे भगाक्षापहं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ।।६।।

जो पाँच मुखवाले हैं तथा जो अघोर, सद्योजात, तत्पुरुष, वामदेव और ईशानसंज्ञक हैं, उन कमलके समान मुखवाले भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके तीन नेत्र हैं, जिनका अग्निरूप नेत्र ललाटमें है, ऐसे भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। अपने मस्तकपर भगवती गङ्गा और अर्ध चन्द्रमाको तथा सिरपर मुकुटके रूपमें सुन्दर जटाको धारण किये हैं, ऐसे आकाशकी तरह व्यापक भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन भगवान् शङ्करकी पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, यजमान, सूर्य और चन्द्र मतान्तरसे शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव नामक आठ मूर्तियाँ हैं, ऐसे उन भस्मनिर्मित त्रिपुण्ड्रको जटाके रूपमें धारण करनेवाले भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भक्त-जनोंके आश्रयदाता हैं, उन वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ।।५।।

जो कालको जीतनेवाले, पापका हरण करनेवाले, कण्ठमें विषको धारण करनेवाले, सुख देनेवाले तथा जटामें गङ्गजीको धारण करनेवाले

व्यापक, दयारूपी अमृतके निधि हैं और शरभरूप धारणकर नृसिंहको लेकर आकाशमें उड़ जानेवाले हैं एवं जिनके चरणकमलोंकी वन्दना ब्राह्मण एवं देवता भी करते हैं, जिन्होंने भगाक्ष (इन्द्र)-के दुःखका निवारण किया है तथा जो भक्तों को आश्रय देने वाले और वरदानी हैं, ऐसे उन कल्याणस्वरूप भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६॥

वन्दे मङ्गलराजताद्रिनिलयं वन्दे सुराधीश्वरं
वन्दे शङ्करमप्रमेयमतुलं वन्दे यमद्वेषिणम् ।
वन्दे कुण्डलिराजकुण्डलधरं वन्दे सहस्राननं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥७॥
वन्दे हंसमतीन्द्रियं स्मरहरं वन्दे विरूपेक्षणं
वन्दे भूतगणेशमव्ययमहं वन्देऽर्थराज्यप्रदम् ।
वन्दे सुन्दरसौरभेयगमनं वन्दे त्रिशूलायुधं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥८॥
वन्दे सूक्ष्ममनन्तमाद्यमभयं वन्देऽन्धकारापहं

जो चाँदीके समान शुभ्र एवं माङ्गलिक हिमालय पर्वतपर रहते हैं, जो सहस्र (अनन्त)-मुखवाले हैं, जो सभी देवताओंके स्वामी हैं, जो कल्याण करनेवाले, अप्रमेय और अतुलनीय हैं एवं शेषनागको जिन्होंने कानोंका कुण्डल बनाया है, यमको पराजित किया है, भक्त-जनोंको आश्रय देनेवाले वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ॥७॥

जो सूर्यस्वरूप और इन्द्रियोंसे परे हैं, जो कामदेवको भस्म करनेवाले हैं, जो तीन नेत्र होनेके कारण विरूपाक्ष कहे गये हैं, जो सर्वथा अविनाशी हैं, जो धन और राज्यके प्रदाता हैं तथा भूतगणोंके स्वामी हैं, जो सुन्दर वृषवाहनपर आरूढ़ होकर चलते हैं, त्रिशूल ही जिनका आयुध है, ऐसे जो भक्त-जनोंको आश्रय देनेवाले वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्कर हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

वन्दे फूलननन्दिभृङ्गिविनतं वन्दे सुपर्णावृतम् ।
वन्दे शैलसुतार्धभागवपुषं वन्देऽभयं त्र्यम्बकं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥९॥
वन्दे पावनमम्बरात्मविभवं वन्दे महेन्द्रेश्वरं
वन्दे भक्तजनाश्रयामरतरुं वन्दे नताभीष्टदम् ।
वन्दे जह्नुसुताम्बिकेशमनिशं वन्दे गणाधीश्वरं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१०॥

॥ इति श्रीशिवस्तुतिः सम्पूर्णा ॥

उन महाशिवको प्रणाम है जो सूक्ष्म हैं, अनन्त हैं, जो सबके आद्य हैं और जो निर्भीक हैं; जिन्होंने अन्धकासुरका वध किया है, जिन्हें फूलन, नन्दी और भृङ्गी प्रणाम अर्पित करते हैं, जो सुपर्णाओं (कमलिनियों)-से आवृत हैं, जिनके आधे शरीरमें शैलसुता पार्वती हैं, जो भक्तोंको निर्भीक करनेवाले हैं, जिनके तीन नेत्र हैं। जो भक्तजनोंको आश्रय देनेवाले एवं वरदानी हैं, ऐसे कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं प्रणाम करता हूँ ॥९॥

जिनका आत्मविभव परम पावन है और आकाशकी तरह व्यापक है, जो देवराज इन्द्रके भी स्वामी हैं, जो भक्तजनोंके लिये कल्पवृक्षके समान आश्रय हैं, जो प्रणाम करनेवालोंको भी अभीष्ट फल प्रदान करते हैं, जिनकी एक पत्नी गङ्गा और दूसरी पार्वती हैं और जो अनेक प्रमुख गणोंके भी स्वामी हैं, ऐसे भक्त-जनोंको आश्रय देनेवाले वरदानी कल्याणस्वरूप भगवान् शङ्करको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ ॥१०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवस्तुति सम्पूर्ण हुई ॥

हिमालयकृतं शिवस्तोत्रम्

हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः ।
त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः ॥१॥
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः ।
प्रकृतिः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः ॥२॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे ।
येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च ॥३॥
सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम् ।
सोमस्त्वं शस्य पाता च सततं शीतरश्मिना ॥४॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निः सर्वदाहकः ।
इन्द्रस्त्वं देवराजश्च कालो मृत्युर्यमस्तथा ॥५॥

हिमालय ने कहा–[हे परम शिव!] आप ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। आप ही जगत्के पालक विष्णु हैं। आप ही सबका संहार करनेवाले अनन्त हैं और आप ही कल्याणकारी शिव हैं ॥१॥

आप गुणातीत ईश्वर, सनातन ज्योतिःस्वरूप हैं। प्रकृति और प्रकृतिके ईश्वर हैं। प्राकृत पदार्थ होते हुए भी प्रकृतिसे परे हैं ।।२।।

भक्तोंके ध्यान करने के लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं। जिन रूपों में जिसकी प्रीति है, उनके लिये आप वही रूप धारण कर लेते हैं ।।३।।

आप ही सृष्टिके जन्मदाता सूर्य हैं। समस्त तेजोंके आधार हैं। आप ही शीतल किरणोंसे सदा शस्योंका पालन करनेवाले सोम हैं ।।४।।

आप ही वायु, वरुण और सर्वदाहक अग्नि हैं। आप ही देवराज इन्द्र, काल, मृत्यु तथा यम हैं ।।५।।

मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः ।
वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः ।।६।।
विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः ।
मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः ।।७।।
वाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम् ।
अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।।८।।
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम् ।
तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्य वृषाच्छिवः ।।९।।
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे ।।१०।।

मृत्युञ्जय होनेके कारण मृत्युकी भी मृत्यु, कालके भी काल तथा यमके भी यम हैं। वेद, वेदकर्ता तथा वेद-वेदाङ्गों के पारङ्गत विद्वान् भी आप ही हैं ।।६।।

आप ही विद्वानोंके जनक, विद्वान् तथा विद्वानोंके गुरु हैं। आप ही मन्त्र, जप, तप और उनके फलदाता हैं ।।७।।

आप ही वाक् और आप ही वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। आप ही उसके स्रष्टा और गुरु हैं। अहो! सरस्वतीबीजस्वरूप आपकी स्तुति यहाँ कौन कर सकता है ॥८॥

ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय उन (भगवान् शिवजी)-के चरणकमलोंको पकड़कर खड़े रहे। भगवान् शिवने वृषभसे उतरकर शैलराजको प्रबोध देकर वहाँ निवास किया ॥९॥

जो मनुष्य तीनों संध्याओंके समय इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, वह भवसागरमें रहकर भी समस्त पापों तथा भयोंसे मुक्त हो जाता है ॥१०॥

अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं ।
भार्याहीनो लभेद् भार्यां सुशीलां सुमनोहराम् ॥११॥
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम् ।
राज्यभ्रष्टो लभेद् राज्यं शङ्करस्य प्रसादतः ॥१२॥
कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसङ्कटे ।
गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने ॥१३॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते ।
सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शङ्करस्य प्रसादतः ॥१४॥

॥ इति श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणे हिमालयकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

पुत्रहीन मनुष्य यदि एक मासतक इसका पाठ करे तो पुत्र पाता है। भार्याहीनको सुशीला तथा परम मनोहारिणी भार्या प्राप्त होती है ॥११॥

वह चिरकालसे खोयी हुई वस्तुको सहसा तथा अवश्य पा लेता है। राज्यभ्रष्ट पुरुष भगवान् शंकरके प्रसादसे पुनः राज्यको प्राप्तकर लेता है ॥१२॥

कारागार, श्मशान और शत्रु-संकटमें पड़नेपर तथा अत्यन्त जलसे भरे गम्भीर जलाशयमें नाव टूट जानेपर, विष खा लेनेपर, महाभयंकर संग्रामके बीच फँस जानेपर तथा हिंसक जन्तुओंसे घिर जानेपर इस स्तुतिका पाठ करके मनुष्य भगवान शंकरकी कृपासे समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है ।।१३-१४।।

।। इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण में हिमालय कृत शिवस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ।।

श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्रम्

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥१॥
बीजस्यान्तरिवाङ्कुरो जगदिदं प्राङ्निर्विकल्पं शनै-
र्मायाकल्पितदेशकालकलनावैचित्र्यचित्रीकृतम् ।
मायावीव विजृम्भ्यत्यपि महायोगीव यः स्वेच्छया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥२॥

जो अपने हृदयस्थित दर्पणमें दृश्यमान नगरी-सदृश विश्वको निद्राद्वारा स्वप्नकी भाँति मायाद्वारा बाहर प्रकट हुए की तरह आत्मामें देखते हुए ज्ञान होनेपर अथवा निद्रा भंग होनेपर अपने अद्वितीय आत्माका साक्षात्कार करते हैं, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥१॥

जिन्होंने महायोगीकी तरह अपनी इच्छासे सृष्टिके पूर्व निर्विकल्प रूपसे स्थित इस जगत्‌को बीजके भीतर स्थित अङ्कुरकी भाँति माया द्वारा कल्पित देश, काल और धारणाकी विचित्रतासे चित्रित किया है तथा

मायावी-सदृश जँभाई लेते हुए-से दीखते हैं, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥२॥

यस्यैव स्फुरणं सदात्मकमसत्कल्पार्थकं भासते
साक्षात् तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्याश्रितान् ।
यत्साक्षात्करणाद्भवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाम्भोनिधौ
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥३॥

नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं
ज्ञानं यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ।
जानामीति तमेव भान्तमनुभात्येतत् समस्तं जगत्
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये मद इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥४॥

जिसका सदात्मक स्फुरण ही असत्-तुल्य भासित होता है, जो अपने आश्रितोंको '**साक्षात् तत्त्वमसि**' अर्थात् 'तुम साक्षात् वही ब्रह्म हो' इस वेद-वाक्य द्वारा ज्ञान प्रदान करते हैं तथा जिनका साक्षात्कार करनेसे पुनः भवसागरमें आवागमन नहीं होता, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥३॥

अनेक छिद्रोंवाले घटके भीतर स्थित विशाल दीपककी उज्ज्वल प्रभाके समान ज्ञान जिनके नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा बाहर प्रसारित होता है तथा जैसा मैं समझता हूँ कि उसीके प्रकाशित होनेपर यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥४॥

देहं प्राणमपीन्द्रियाण्यपि चलां बुद्धिं च शून्यं विदुः
स्त्रीबालान्धजडोपमास्त्वहमिति भ्रान्ता भृशं वादिनः ।
मायाशक्तिविलासकल्पितमहाव्यामोहसंहारिणे
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥५॥

राहुग्रस्तदिवाकरेन्दुसदृशो मायासमाच्छादनात्
सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योऽभूत् सुषुप्तः पुमान् ।
प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभिज्ञायते
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥६॥

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थास्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तः स्फुरन्तं सदा ।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥७॥

भ्रमित हुए बहुवादी-शून्यवादी बौद्ध आदि देह, प्राण, इन्द्रियोंको तथा तीव्र बुद्धिको भी स्त्री, बालक, अंध और जडकी तरह शून्य मानते हैं तथा 'अहं' को ही प्रधानता देते हैं, ऐसे माया-शक्तिके विलाससे कल्पित महामोहका संहार करनेवाले उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥५॥

जो पुरुष राहुद्वारा ग्रस्त सूर्य-चन्द्रके समान माया द्वारा समाच्छादित होनेके कारण सन्मात्रका इन्द्रियों द्वारा उपसंहार करके सो गया था, उसे निद्रामें लीन होनेपर अथवा जागनेके पश्चात् जो प्रत्यभिज्ञातुल्य भासित होता है, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥६॥

जो अपने भक्तोंके समक्ष भद्रा मुद्रा द्वारा बाल, युवा, वृद्ध, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा सभी व्यावर्तित अवस्थाओंमें भी अनुवर्तमान एवं सदा 'अहं' रूपसे अन्तःकरणमें स्फुरमाण स्वात्माको प्रकट करते हैं, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥७॥

विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसम्बन्धतः
शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः ।
स्वप्ने जाग्रति वा य एष पुरुषो मायापरिभ्रामित-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥८॥

भूरम्भांस्यनलोऽनिलोऽम्बरमहर्नाथो हिमांशुः पुमा-
नित्याभाति चराचरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकम् ।
नान्यत्किञ्चन विद्यते विमृशतां यस्मात् परस्माद्विभो-
स्तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥९॥
सर्वात्मत्वमिति स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन् स्तवे
तेनास्य श्रवणात् वदर्थमननादुध्यानाच्च संकीर्तनात् ।
सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्यादीश्वरत्वं स्वतः
सिध्येत् तत्पुनरष्टधा परिणतं चौश्वर्यमव्याहतम् ॥१०॥

जिनकी मायाद्वारा परिभ्रामित हुआ यह पुरुष स्वप्न अथवा जाग्रत्अवस्थामें विश्वको कार्य-कारण, स्वामी-सेवक, शिष्य-आचार्य तथा पिता-पुत्रके भेदसे देखता है, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥८॥

जिनकी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पुरुष-ये आठ मूर्तियाँ ही इस चराचर जगत्के रूपमें प्रकाशित हो रही हैं तथा विचारशीलोंके लिये जिन परात्पर विभुके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, उन श्रीगुरुस्वरूप श्रीदक्षिणामूर्तिको यह मेरा नमस्कार है ॥९॥

चूँकि इस स्तोत्रमें यह स्पष्ट किया गया है कि यह चराचर जगत् सर्वात्मस्वरूप है, इसलिये इसका श्रवण, इसके अर्थका मनन, ध्यान और संकीर्तन करनेसे स्वतः सर्वात्मस्वरूप महाविभूति सहित ईश्वरत्वकी प्राप्ति होती है, पुनः आठ रूपोंमें परिणत हुआ स्वच्छन्द ऐश्वर्य भी सिद्ध हो जाता है ॥१०॥

वटविटपिसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात् ।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं
जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि ॥११॥
चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ॥१२॥

जो वटवृक्षके समीप भूमि भाग पर स्थित हैं, निकट बैठे हुए समस्त मुनिजनोंको ज्ञान प्रदान कर रहे हैं, जन्म-मरणके दुःखका विनाश करनेमें प्रवीण हैं, त्रिभुवनके गुरु और ईश हैं, उन भगवान् दक्षिणामूर्तिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

आश्चर्य तो यह है कि उस वटवृक्षके नीचे सभी शिष्य वृद्ध हैं और गुरु युवा हैं। साथ ही गुरुका व्याख्यान भी मौन भाषा में है, किंतु उसीसे शिष्योंके संशय नष्ट हो गये हैं ॥१२॥

॥इस प्रकार श्रीदक्षिणामूर्तिस्तोत्र सम्पूर्ण हुआ॥

देत संपदासमेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति-भाँग, बृषभ बहनु है ।
नाम बामदेव दाहिनो सदा असंग रंग
अर्द्ध अंग अंगना, अनंगको महनु है ॥
तुलसी महेसको प्रभाव भावहीं सुगम
निगम-अगमहूको जानिबो गहनु है।
भेष तौ भिखारिको भयंकररूप संकर
दयाल दीनबंधु दानि दारिददहनु है॥
(कवितावली १६०)

श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं ॥१॥
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं ।
करालं महाकाल कालं कृपालं
गुणागार संसारपारं नतोऽहं ॥२॥
तुषाराद्रि सङ्काश गौरं गभीरं
मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरं ।
स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा
लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा ॥३॥

हे ईशान! मैं मुक्तिस्वरूप, समर्थ, सर्वव्यापक, ब्रह्म, वेदस्वरूप, निज स्वरूपमें स्थित, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, अनन्त ज्ञानमय और आकाशके समान सर्वत्र व्याप्त प्रभुको प्रणाम करता हूँ ॥१॥

जो निराकार हैं, ओंकार रूप आदिकारण हैं, तुरीय हैं, वाणी, बुद्धि और इन्द्रियोंके पथसे परे हैं, कैलासनाथ हैं, विकराल और महाकालके भी काल, कृपाल, गुणोंके आगार और संसारसे तारनेवाले हैं, उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।।

जो हिमालयके समान श्वेतवर्ण, गम्भीर और करोड़ों कामदेवोंके समान कान्तिमान् शरीरवाले हैं, जिनके मस्तकपर मनोहर गङ्गाजी लहरा रही हैं, भालदेश में बाल-चन्द्रमा सुशोभित होते हैं और गलेमें सर्पों की माला शोभा देती है ।।३।।

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं
प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं ।
मृगाधीशचर्माम्बरं मुंडमालं
प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि ।।४।।
प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं
अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं ।
त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं
भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं ।।५।।
कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी
सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ।
चिदानंद संदोह मोहापहारी
प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ।।६।।

जिनके कानोंमें कुण्डल हिल रहे हैं, जिनके नेत्र एवं भृकुटि सुन्दर और विशाल हैं, जिनका मुख प्रसन्न और कण्ठ नील है, जो बड़े ही दयालु हैं, जो बाघके चर्मका वस्त्र और मुण्डोंकी माला पहनते हैं, उन सर्वाधीश्वर प्रियतम शिवका मैं भजन करता हूँ ।।४।।

जो प्रचण्ड, सर्वश्रेष्ठ, प्रगल्भ, परमेश्वर, पूर्ण अजन्मा, कोटि सूर्यके समान प्रकाशमान, त्रिभुवनके शूलनाशक और हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले हैं, उन भावगम्य भवानीपतिका मैं भजन करता हूँ ।।५।।

हे प्रभो! आप कलारहित, कल्याणकारी और कल्पका अन्त करनेवाले हैं। आप सर्वदा सत्पुरुषोंको आनन्द देते हैं, आपने त्रिपुरासुरका नाश किया था, आप मोहनाशक और ज्ञानानन्दघन परमेश्वर हैं, कामदेवके शत्रु हैं, आप मुझपर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों ।।६।।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं
भजंतीह लोके परे वा नराणाम् ।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं
प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।।७।।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां
नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ।
जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं
प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ।।८।।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति ना भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ।।९।।

।। इति श्रीगोस्वामितुलसीदासकृतं श्रीरुद्राष्टकं सम्पूर्णम् ।।

मनुष्य जबतक उमाकान्त महादेवजीके चरणारविन्दोंका भजन नहीं करते, उन्हें इहलोक या परलोकमें कभी सुख तथा शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती और न उनका सन्ताप ही दूर होता है। हे समस्त भूतोंके निवासस्थान भगवान् शिव! आप मुझपर प्रसन्न हों ।।७।।

हे प्रभो! हे शम्भो! हे ईश! मैं यज्ञ, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता, हे शम्भो! मैं सदा-सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। जरा, जन्म और दुःखसमूहसे सन्तप्त होते हुए मुझ दुःखीकी दुःखसे आप रक्षा कीजिये ॥८॥

जो मनुष्य भगवान् शङ्करकी तुष्टिके लिये ब्राह्मण द्वारा कहे हुए इस 'रुद्राष्टक'का भक्ति पूर्वक पाठ करते हैं, उनपर शङ्करजी प्रसन्न होते हैं ॥९॥

॥ इस प्रकार श्रीगोस्वामी तुलसीदासरचित श्रीरुद्राष्टक सम्पूर्ण हुआ ॥

द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरणम्

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम् ॥१॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥२॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।

---

(१) सौराष्ट्र प्रदेश (काठियावाड़)-में श्रीसोमनाथ[१], (२) श्रीशैल[२]पर श्रीमल्लिकार्जुन, (३) उज्जयिनी (उज्जैन)-में श्रीमहाकाल[३], (४) ॐकारेश्वर[४] अथवा अमलेश्वर ॥१॥ (५) परलीमें वैद्यनाथ[५] (६) डाकिनी नामक स्थानमें श्रीभीमशङ्कर[६], (७) सेतुबन्धमें श्रीरामेश्वर[७], (८) दारुकावनमें श्रीनागेश्वर[८] ॥२॥ (९) वाराणसी (काशी)-

---

१. श्रीसोमनाथ काठियावाड़प्रदेशके अन्तर्गत प्रभासक्षेत्रमें विराजमान है। २. यह पर्वत मद्रास प्रान्तके कृष्णा जिलेमें कृष्णा नदीके तटपर है, इसे दक्षिणका कैलास कहते हैं। ३. श्रीमहाकालेश्वर मालवा प्रदेशमें क्षिप्रा नदीके तटपर उज्जैन नगरमें विराजमान है, उज्जैनको अवन्तिकापुरी भी

कहते हैं। ४. ॐकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है। उज्जैनसे खण्डवा जानेवाली रेलवे लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है, वहाँसे यह स्थान ६ मील दूर है। यहाँ ॐकारेश्वर और अमलेश्वरके दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं, परंतु ये एक ही लिङ्गके दो स्वरूप हैं। ५. आन्ध्र प्रदेशके हैदराबाद नगरसे पहले परभनी नामक जंकशन है, वहाँसे परली तक एक ब्रांच लाइन गयी है, इस परली स्टेशनसे थोड़ी दूरपर परली ग्रामके निकट श्रीवैद्यनाथ नामक ज्योतिर्लिङ्ग है। शिवपुराणमें **'वैद्यनाथं चिताभूमौ'** ऐसा पाठ है, इसके अनुसार संथाल परगनेमें ई० आई० रेलवेके जैसीडीह स्टेशनके पासवाला वैद्यनाथ-शिवलिङ्ग वास्तविक वैद्यनाथज्योतिर्लिङ्ग सिद्ध होता है; क्योंकि यही चिताभूमि है। ६. श्रीभीमशङ्करका स्थान बम्बई (मुंबई)-से पूर्व और पूनासे उत्तर भीमा नदीके किनारे सह्यपर्वतपर है। यह स्थान लारीके रास्तेसे नासिकसे लगभग १२० मील दूर है। सह्यपर्वतके एक शिखरका नाम डाकिनी है। इससे अनुमान होता है कि कभी यहाँ डाकिनी और भूतोंका निवास था। शिवपुराणकी एक कथाके आधारपर भीमशङ्कर ज्योतिर्लिङ्ग आसामके कामरूप जिलेमें ए० बी० रेलवेपर गोहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर स्थित बतलाया जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि नैनीताल जिलेके उज्जनक नामक

हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये ॥३॥

एतानि जयोतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।

सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥४॥

में श्रीविश्वनाथ[९], (१०) गौतमी (गोदावरी)-के तट पर श्रीत्र्यम्बकेश्वर[१०], (११) हिमालय पर केदारखण्ड में श्रीकेदारनाथ[११] और (१२) शिवालय में श्रीघुश्मेश्वरको[१२] स्मरण करना चाहिये ॥३॥

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और संध्याकाल में इन बारह ज्योतिर्लिङ्गों के नामों का स्मरण करता है, उसके सात जन्मों का किया हुआ पाप इन लिङ्गों के स्मरण मात्र से नष्ट हो जाता है ॥४॥

॥ इस प्रकार द्वादशज्योतिर्लिङ्गस्मरण सम्पूर्ण हुआ ॥

स्थानमें एक विशल शिवमन्दिर है, वही भीमशङ्करका स्थान है। ७. श्रीरामेश्वर तीर्थ प्रसिद्ध है, यह तमिलनाडु (मद्रास) प्रान्तके रामनन्द जिलेमें है। ८. यह स्थान बड़ौदा राज्यान्तर्गत गोमती द्वारकासे ईशानकोणमें १२-१३ मीलकी दूरीपर है। कोई-काई निजाम हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत औढ़ाग्राममें स्थित शिवलिङ्गको ही 'नागेश्वर' ज्योतिर्लिङ्ग मानते हैं। कुछ लोगों के मतसे अल्मोडासे १७ मील उत्तर-पूर्वमें योगेश (जागेश्वर) शिवलिङ्ग ही नागेश ज्योतिर्लिङ्ग है। ९. काशी के श्रीविश्वनाथजी प्रसिद्ध ही हैं। १०. यह ज्योतिर्लिङ्ग महाराष्ट्र प्रान्तके नासिक जिलेमें नासिक-पञ्चवटीसे (जहाँ शूर्पणखाकी नाक कटी थी) १८. मीलकी दूरीपर ब्रह्मगिरिके निकट गोदावरीके किनारे है। ११. श्रीकेदारनाथ हिमालयके केदार नामक शृंङ्गपर स्थित हैं। शिखरके पूर्वकी और अलकनन्दाके तटपर श्रीबदरीनाथ अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरद्वारसे १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील दूर है। १२. श्रीघुश्मेश्वरको घुसृणेश्वर या घृष्णेश्वर भी कहते हैं। इनका स्थान दौलताबाद स्टेशनसे बारह मील दूर बेरूल गाँवके पास है।

नोटः

कृप्या देखें अंत में संलग्न मानचित्र भारत के प्रधान शिवपीठ

शिवमहिमा

ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्त एव हि ।
द्व्यक्षरं नाम येषां वै जिह्वाग्रे संस्थितं सदा ॥
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै ।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः ॥
किंचिद्दलेन संतुष्टः पुष्पेणापि तथैव च ।
तोयेनापि च संतुष्टो महादेवो निरन्तरम् ॥
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि ।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह ॥
एको महान् ज्योतिरजः परेशः परावराणां परमो महात्मा ।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः ॥
निरञ्जनो नित्युक्तो निराशो निराधरो नित्यमुक्तः सदैव हि ॥

(स्क० मा० के०, अ० २७)

जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर सदा भगवान् शंकरका दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतवृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नामका उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूपमें रुद्र हैं, इसमें संशय नहीं है। महादेवजी थोड़ा-सा बिल्वपत्र पाकर भी सदा संतुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करनेसे भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव सदा सबके लिये कल्याणस्वरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जलसे ही संतुष्ट हो जाते हैं। इसलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिये। शिवजी इस जगत्में मनुष्योंको महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं। ये एक हैं, महान् हैं, ज्योतिःस्वरूप हैं तथा अजन्मा परमेश्वर हैं। महात्मा शिव कार्य और कारण सबसे परे हैं। ये व्यवधानशून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरञ्जन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।

कल्याणकारी शिव

कासीके बसैया परकासीके दिवैया नाथ,
भंगके छनैया अरू गंगके धरैया तुम ।
बेसके अमंगल और जंगलके बासी प्रभु,
तौहू महामंगल हौ मंगल करैया तुम ॥
केतिक उधारे केते तारे भवसागरतें,
केतिक सम्हारे ऐसे बिपद-हरैया तुम ।
एहो त्रिपुरारी अघहारी सुखकारी शिव ।
'प्रेम' पर्‍यौ द्वारे आज लाजके रखैया तुम ॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणाविधिः स्तोत्रणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥

'प्रभो! आप ही मेरी आत्मा हैं, भगवती गिरिजा मेरी मति (बुद्धि) हैं। मेरे प्राण आपके सहचर हैं और यह शरीर आपका गृह-मन्दिर है। आप द्वारा प्रदत्त विषय और उनका उपभोग आपकी पूजा है। मेरी निद्रावस्था ही आपकी समाधि (ध्यान) है। मेरा पाद-संचरण (भ्रमण) ही आपकी परिक्रमा है। मेरे शब्द (बातचीत और लेखन) आपके स्त्रोत पाठ (स्तुति-प्रार्थना) हैं। शम्भो! मेरे द्वारा जो कुछ भी सम्पादित हो रहा है, वह सब आपकी ही अराधना है।'

ब्रह्मा-विष्णुकृत शिव-स्तवन

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ।
नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च ।
वेदकर्मावदातानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः ।
नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः ॥
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः ।
कीर्तितं तव महात्म्यमयारं परमात्मणः ॥
शिवो नो भव सर्वत्र सोऽसि नमोऽस्तु ॥

(ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बोले–) भगवन्! आप सुव्रत और अनन्त तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्वके बीज–स्वरूप और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम सभी भूतोंके उत्पत्ति–स्थान और वेदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोंको सम्पन्न करानेवाले, समस्त द्रव्योंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप विद्याके आदि कारण और स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतों एवं मन्त्रोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्तिसे जैसा हमने आपको समझा, वैसा ही आपके अपार महात्म्यंका यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अज्ञेय और अगम्य हैं, आपको नमस्कार है।

(वायुपुराण, पूर्वा०)

ज्योतिमात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञानचक्षुषे ।

नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये ॥

ज्योतिमात्र (ज्ञानज्योति अर्थात् सच्चिदानंद साक्षी) जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र हैं, जो लिंग स्वरूप ब्रह्म हैं, उन परम शांत कल्याणमय भगवान शिव को नमस्कार है ।

शिवेतिनामदावाग्नेर्महापातक पर्वताः ।

भस्मीभवन्त्यनायासात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥

'शिव' इस नामरूपी दावानालसे बड़े-बड़े पातकों के असंख्य पर्वत अनायास भस्म हो जाते हैं—यह सत्य है, सत्य हैं ।

भगवान शिव सर्वोपरी परात्पर तत्त्व हैं । अर्थात् जिससे परे और कुछ भी नहीं है—

'यस्मात्परं नापरमस्ति किंचित्।'

मन्त्र उपासनामें पञ्चाक्षरी 'नमः शिवाय' और महामृत्युंजय आदि मंत्रों के जपों की विशेष महिमा हैं । मृत्युंजय-मंत्र के जप-अनुष्ठान से सभी प्रकार के मृत्युभय दूर होकर दीर्घायुष्य की प्राप्ति होती है, साथ ही अमरत्व की भी प्राप्ति होती है । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, राष्ट्रभीति, महामारी, शान्ति, अन्य उपद्रवों की शान्ति तथा अभीष्ट-प्राप्ति के लिए रूद्राभिषेक आदि अनुष्ठान किए जाते हैं ।

महादेव की महिमा बड़ी ही विलक्षण है । 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्रसे आजतक अनेक लोगों ने मनोवांछित फल प्राप्त किया है ।

शिव का लोककल्याणकारी आराध्यस्वरूप उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकारी साधकों, एवं सर्वसाधारण आस्तिक जनों–सभी के लिये परम मंगलमय, परम कल्याणकारी, सर्वसिद्धिदायक और सर्वश्रेयस्कर है ।

भगवान् शंकर मात्र पौराणिक देवता ही नहीं, अपितु वे पञ्चदेवों में प्रधान, अनादि सिद्ध परमेश्वर हैं तथा निगमागम आदि सभी शास्त्रों में महिमामण्डित महादेव हैं ।

वेदों ने महादेवको परमतत्व के अव्यक्त, अजन्मा, सबका कारण एवं विश्व प्रपंचके सर्जक, पालक, व संरक्षक के स्वरूपमें गुणगान किया है तो श्रुतियोंने इन्हीं सदाशिवको स्वयम्भू, शान्त, परात्पर, परमतत्व ईश्वरों के भी परम महेश्वर कहकर स्तुति की है ।

शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि देव, दनुज, ऋषि, महर्षि, योगिन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्ध, गंधर्व ही नहीं अपितु ब्रह्मा–विष्णु तक इन महादेव की उपासना करते हैं । भगवान राम तथा श्री कृष्णके तो ये परमाराध्य ही हैं ।

मानवजीवनकी परिपूर्णताके लिये, मनोवांछित फल प्राप्ति के लिये एवं सांसारिक क्लेशों से छूटने के लिये आइये, हम भी शिव उपासना का आश्रय लें ।

–महाप्रभु श्री श्री नारायण प्रेम साँई